प्रारंभिक गणित : सीखने-सिखाने का एक परिप्रेक्ष्य

❑ के. सुब्रमण्यम

शिक्षा मात्र का जगत काफी निराशाजनक है और गणित की शिक्षा तो उसमें भी निम्नतर स्तर पर है। इस लेख में स्कूल में पढ़ाये जाने वाले आरंभिक गणित की विषयवस्तु और शिक्षणशास्त्र दोनों पर विचार किया गया है। लेखक ने आरंभिक गणित के सीखने-सिखाने में होने वाली दिक्कतों की प्रकृति पर चर्चा की है। इसमें आरंभिक गणित के कुछ हिस्सों, मुख्य तौर पर संख्या, गणितीय अभिक्रिया तथा बीज गणित पर चर्चा को भी शामिल किया गया है। लेखक इस सवाल पर विश्लेषणपरक नजरिया प्रस्तुत करता है कि एक छात्र जब आरंभिक गणित की आधारभूत अवधारणाओं को सीखता है तब इसके साथ-साथ उसका मनोवैज्ञानिक विकास कैसे होता है ? गणित सीखने-सिखाने को लेकर किये गये संज्ञानात्मक अध्ययनों से प्राप्त अन्तर्दृष्टि ने लेख को सुसंगत पृष्ठभूमि प्रदान की है।

विश्व की ज्यादातर समकालीन संस्कृतियों में विद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली गणित अपेक्षाकृत एक समान और सुपरिभाषित है। अपनी अगली पीढ़ी को हम जो सौंप रहे हैं उसमें गणित की स्थिति को लेकर एक सहमति हमें देखने को मिलती है। गणित के महत्त्व को सिर्फ उसकी उपयोगिता के आधार पर मापना गलत होगा। संगीत की तरह ही गणित भी मानवजाति की खुद को परिभाषित करने वाली एक उपलब्धि और हमारी साझी थाती का हिस्सा है। लेकिन संगीत के बरअक्स इसका विस्तार यहां तक कि अतार्किकता की हद तक-बौद्धिक और व्यावहारिक पेशों तक है। इसलिए इस तक हमारी पहुंच को नकारने का परिणाम बहिष्कार की नीति को- न केवल सांस्कृतिक संदर्भ में बल्कि सामाजिक और राजनीतिक संदर्भ में- अपनाने को बढ़ावा देना होगा।

हमारे स्कूली छात्रों की गणित में वास्तविक उपलब्धि और समता के 'विधान' में तीखी विषमता है। कुल मिलाकर शिक्षा की ही स्थिति काफी निराशाजनक है, और उसमें भी गणित की शिक्षा की स्थिति सबसे खराब है। यह स्थिति आरंभिक गणित की विषय वस्तु और उसे पढ़ाए जाने के तरीकों के बारे में सोचने को मजबूर करती है, साथ ही विषय वस्तु केसंदर्भ में पढ़ाए जाने के तरीकों और तरीकों के सन्दर्भ में विषयवस्तु के बारे में भी सोचने को मजबूर करती है। और यही इस लेख की मुख्य चिंता है। इस लेख में मेरा इरादा आरंभिक गणित के सीखने तथा सिखाने में होने वाली दिक्कतों की प्रकृति पर चर्चा करने का है। इसमें आरंभिक गणित के कुछ हिस्सों, मुख्य तौर पर संख्या, गणितीय संक्रियाओं तथा बीजगणित पर चर्चा को शामिल किया जाएगा । इसे सीखने के मनोविज्ञान की दृष्टि से देखें कि जब एक छात्र आरंभिक गणित की आधारभूत अवधारणाओं को सीखता है तब उसकी मानसिक संरचना में कैसा बदलाव आ रहा होता है ?

इसलिए यहाँ हम अपनी चर्चा की शुरूआत गणित सीखने-सिखाने को लेकर किये गये संज्ञानात्मक (कॉग्नीटिव) अध्ययनों से प्राप्त अन्तर्दृष्टि से करेंगे । इस लेख में जगह-जगह पर गणित शिक्षा की वास्तविक स्थिति को लेकर कई संदर्भो का हवाला दिया जायेगा। इसका यह मतलब कतई नहीं है कि ऐसा करके यहां किसी विशेष नजरिये की वकालत की जा रही है, बल्कि इन संदर्भो को यहां रखने का इरादा यह है कि एक सुसंगत पृष्ठभूमि वाली दृष्टि बनी रहे। इसके साथ ही इन संदर्भों में हमें कुछ ऐसे महत्वपूर्ण बिन्दु भी मिलेंगे, जो विपरीत मत होंगे और चर्चा को आगे बढ़ाने में हमारी मदद करेंगे । लेकिन इससे पहले आरंभिक गणित को आम तौर पर जितना समझा जाता है, उससे कहीं अधिक स्पष्टता से समझने की जरुरत है।

स्कूल में गणित

अखबार में लिखे गये एक लेख में एक शिक्षक-प्रशिक्षक ने शिक्षकों के एक समूह से हुई अपनी चर्चा का उल्लेख किया। उस प्रशिक्षक ने शिक्षकों से एक सवाल 981÷9 को हल करने को कहा। कई शिक्षकों का उत्तर 109 की बजाय 19 आया । इसके परिणाम स्वरूप जो तर्क-वितर्क वहां हुए, उसमें ऐसे शिक्षकों ने, जिनका उत्तर सही था, इस बात को रखा कि वे 19 और 9 का गुणा करके दुबारा 981 नहीं पा सकते हैं । लेकिन 19 का उत्तर लाने वाले शिक्षकों के समूह में से एक शिक्षक ने 19 और 9 को

गुणा करके सचमुच ही 981 का उत्तर ला दिया। दरअसल उसने दुबारा गलती की तथा हासिल '8' को आगे नहीं लाया ।

जाहिर है कि किसी एक प्रक्रिया विशेष को लागू कर देने की क्षमता गणितीय-ज्ञान का दर्जा नहीं पा सकती । इस खेदजनक घटना में अधिकांश शिक्षकों के लिए भाग देने की विधि एक नुस्खा भर थी। जबकि इसके विपरीत स्कूली गणित ज्ञान का एक गुंफित निकाय है। भाग का संबंध गुणा के साथ एक व्युत्क्रम-संक्रिया (इनवर्स ऑपरेशन) का है तथा जोड़ को बार-बार दोहराना ही गुणा है। जैसा कि उपरोक्त उदाहरण में हमने देखा कि एक शिक्षक ने भाग देने की विधि को सही ठहराने के लिए इस संक्रिया को उलट दिया, लेकिन इससे वह अपने साथियों में सम्मति नहीं बना पाया। इस तथ्य - जोड़ को बार-बार दोहराना ही गुणा है-को इस्तेमाल करके भी वे 981÷9 = 19 में हुई चूक को पकड़ नहीं पाए । अगर हम हासिल लेने में गलती करते हैं, तो 19 को 9 बार जोड़ने पर 981 का गलत हल आएगा। इसलिए यहां यह जानने की जरूरत होती है कि जोड़ने की विधि बुनियादी तौर से संख्याओं के स्थानीय मान पर निर्भर करती है, जिसका इस्तेमाल हम संख्याओं को लिखने में करते हैं । दूसरी ओर भाग बराबर के बंटवारे की प्रक्रिया को दर्शाता है । अगर 981 रुपये की मजदूरी को हम 9 मजदूरों में बराबर-बराबर बांटे तो प्रत्येक मजदूर को कितना रुपया मिलेगा? अगर आप प्रत्येक मजदूर को 19 रुपये देते हैं, तो परिणाम विद्रोह के सिवा क्या होगा?

छात्रों में स्कूली शिक्षा के दौरान हम जिस गणितीय ज्ञान को सिखाना चाहते हैं, वह अवधारणात्मक रूप से गणित का बेहद गुंथा हुआ हिस्सा है। और यह अपेक्षा करना कि एक साधारण छात्र इसे सीख सकता है, कुछ ज्यादा अपेक्षा करना नहीं है क्योंकि उसकी संज्ञानात्मक क्षमता इस लायक होती है। हालांकि आज अधिकांश स्कूली छात्रों में गणितीय क्षमता का स्तर इस लक्ष्य से काफी दूर है। शिक्षकों और छात्रों से हुई बातचीत के आधार पर हम जानते हैं कि जब गणित में उनका सामना एक विशिष्ट परिप्रेक्ष्य के साथ होता है - जिसमें समझ तथा अवधारणाओं के बीच के संबंध पर जोर दिया जाता है - तो वे गणित में भी वे खोज करने के बोध का आनन्द लेते हैं या कहें ले सकते हैं। इस तरह के अनुभव उन निराशावादी निष्कर्षों को ठीक करने का काम करते हैं जो कि उपरोक्त वर्णित घटना के प्रतिफल होते है। अधिकांश शिक्षकों के लिए खोज करने का यह बोध वास्तविक होता है, क्योंकि इस क्रम में वे जो देखते या अनुभव करते हैं, वह उससे कदरन अलग होता है जिसके वे अपने शिक्षण में आदी हो चुके हैं। हम कह सकते हैं कि गणित के शिक्षण की समस्या दरअसल गणित को सीखने और सिखाने के उस तरीके में है, जिससे हर पीढ़ी गणित पढ़ती-पढ़ाती आ रही है । स्कूली गणित एक ऐसी शिक्षण परम्परा की गिरफ्त में प्रतीत होती है जिसमें जोर महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर नहीं है।

हमें इस बात पर जोर देना होगा कि स्कूली स्तर पर भी गणितीय समझ का विकास कराना कोई मामूली बात नहीं है । शिक्षकों और छात्रों में फैला यह विश्वास कि गणित सीखना काफी कठिन है, उपरोक्त धारणा को पुष्ट करता है । तब फिर कोई भी इस बात का दावा कैसे कर सकता है कि गणित औसत छात्र की संज्ञानात्मक क्षमता से परे की चीज नहीं है । इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए यह उचित होगा कि इसका एक गहन विश्लेषण किया जाये कि बच्चे आरंभिक गणितीय संबंधों को कैसे सीखते हैं ?

इसे बोध करने की दृष्टि से देखें तो, वे अवधारणाएं भी जबरदस्त उपलब्धि हैं, जिन्हें लगभग हर बच्चा खुद सीख लेता है। संख्या की अवधारणा को विकसित करने के लिए जिन अलग-अलग सीखी गई अवधारणाओं या ढांचों के बीच संयोजन की जरूरत होती है, वह गुणात्मक रूप से स्कूली गणित की अन्य अवधारणाओं को सीखने के लिए जरूरी संयोजन से अलग नहीं होता । इसलिए इस लेख के यहां दो उद्देश्य बनते हैं - पहला इस बात की जांच करना कि स्कूली गणित में बहुत सारे प्रकरण (टॉपिक) कठिन क्यों दिखाई देते हैं तथा दूसरा, पाठकों को यह समझाना कि जो कठिन है, उसे भी सीखा और सिखाया जा सकता है ।

ऐसा नहीं है कि गणित शिक्षण की जिस परम्परा से हम जुड़े हैं, उसमें सिर्फ गणित की संरचना की समझ विकसित करने की बात ही छूटी हो । गणित, समस्याओं को सुलझाने के लिए दांव सीखने का एक बेहतरीन अखाड़ा है। तकनीक द्वारा संचालित एक अर्थव्यवस्था में हमें समस्या-समाधान क्षमता के महत्व को स्वीकार करने में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए । गणित में विभिन्न प्रकार की सुपरिभाषित समस्याओं को प्रस्तुत किया जा सकता है। शिक्षण-शास्त्रीय विशिष्टताओं को पूरा करते हुए समस्याओं के कठिनाई के स्तर को ठीक से नियंत्रित किया जा सकता है। हालांकि कोई यह सवाल उठा सकता है कि क्या कोई आम (क्षेत्रनिर्भरता से रहित) समस्या समाधान क्षमता होती है? और अगर किसी एक क्षेत्र में समस्याओं से निपटने की क्षमता- जैसे गणित में- पा लेने से क्या इसे दूसरे किसी क्षेत्र पर लागू किया जा सकता है? समस्या का समाधान करने में ज्ञान तथा तकनीक ही सब कुछ नहीं है । समस्या समाधान की क्षमता विकसित करने में एक अति महत्वपूर्ण कारक आपका रुझान तथा अपनी क्षमता में विश्वास है (शोएनफेड - 1987)। गणित के सवालों को हल करने के क्रम में जो तकनीक कोई व्यक्ति काम में लेता है, उसे दूसरे परिक्षेत्र में वैसा लागू नहीं कर सकता, लेकिन समस्या से जूझने की उसकी इच्छा और रुझान किसी भी क्षेत्र में उसके लिए सहायक होगा। कुछ शोधों में इस

स्थानान्तरण के सवाल को उठाया गया है, लेकिन ऐसे कौशल तथा रुझान का स्थानान्तरण, जो एक लम्बे समय और मोटे ढंग से परिभाषित क्षेत्रों में हुआ हो, उसकी जांच करना काफी मुश्किल है। फिर भी स्थानान्तरण की संभावना एक ऐसी परिकल्पना है, जो शिक्षा के क्षेत्र में की गई कई कोशिशों में एक अन्तर्धारा की तरह बहती हुई मिलती है। अगर हम चाहते हैं कि छात्र समस्या-समाधान को सीखकर फायदा उठायें, तब संज्ञान तथा रुझान, दोनों कारकों का ध्यान रखना होगा तथा जोर नयी तथा अपरिचित समस्याओं के समाधान पर देना होगा।[1]

हमारी सांस्कृतिक विरासत में गणित का एक महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि यह एक ऐसा ज्ञान है जो अपनी वैधता के लिए कठोर परिक्षणों से गुजरता है । गणित निगमनात्मक साक्ष्यों के एक प्रतीक पर दृढ़ता पूर्वक खड़ा है। यही कारण है कि गणित ग्रीक-काल से ही ज्ञान की दूसरी शाखाओं मसलन ज्योतिष, दर्शन, तर्क, भौतिक तथा रसायन आदि शास्त्रों में काफी फैला है। यूक्लिड ने जिन स्वयंसिद्ध मान्यताओं की संरचनाओं के आधार पर ज्यामिति को सूत्रबद्ध किया था, उनमें काफी कुछ ऐसा था जिससे विभिन्न अनुशासनों के साथ ज्यामिति एक स्पर्धा कर सके।

यह कहा जा सकता है कि गणित के निगमनात्मक साक्ष्य तथा स्वयंसिद्ध मान्यताओं की संरचनाओं (एग्जियोमेटिक स्ट्रेक्चर) इत्यादि का स्कूली गणित से ज्यादा लेना देना नहीं है और यह (स्कूली गणित) आम जनता को शिक्षित करने वाला एक उद्यम है। स्कूली गणित व कॉलेज स्तर पर पढ़ाए जाने वाले गणित विषय की सरसरी तौर पर तुलना करने पर हम पाते हैं कि कॉलेज में साक्ष्यों (निगमात्मक) की स्थिति केन्द्रीय होती है, जबकि स्कूल स्तर पर अंकगणित और बीजगणित में ये बमुश्किल मौजूद होते हैं। स्कूली स्तर पर केवल संश्लेषणात्मक ज्यामिति (सैन्थैटिक ज्यामैट्री) में ही 'सिद्ध-करना' महत्वपूर्ण स्थान रखता है । यह कहा जा सकता है कि यह (सिद्ध करना) छात्रों के एक छोटे समूह-मात्र को संबोधित करता है, या यूं कहें कि केवल उस समूहों को संबोधित करता है जो आगे चलकर गणित और उससे जुड़े विषय के अध्ययन करते हैं। जबकि निगमनात्मक तर्क और स्वयंसिद्ध संरचनाओं में निबद्ध प्रकरण (टॉपिक) की प्रस्तुतियाँ उन छात्रों की जरूरत को पूरा करती हैं जो अपने सीखे पर भी प्रश्न करने की स्वतन्त्रता अनुभव करते हैं। जब बच्चे उन्मुक्त और सोचने के लिए स्वतंत्र होते हैं, तब वे स्वाभाविक रूप से उन बातों के तार्किक आधारों के बारे में पूछते हैं, जो उन्हें परोसी गई हैं। जब शिक्षक इन सवालों का उत्तर देने का प्रयास करता है तो अन्य स्थितियों में शामिल तमाम ऐसी ही बातों पर सवाल उठना कम हो जाता है, जबकि अलग से उन सवालों के जवाब देना ज्यादा मुश्किल होता है। अगर खोज करने की इस प्रक्रिया में किसी मताग्रही निषेध (डॉग्मैटिक इन्जंक्शन) की रूकावट न हो तो सुविकसित स्वयंसिद्ध संरचनाओं में ही इसका हल मिलेगा। विचारों की इस गति को अनुभव करने का मौका गणित की निगमनात्मक व्यवस्था में ही मिलता है। स्वयंसिद्ध संरचनाएं ज्ञान तत्व को एक तार्किक क्रम प्रदान करती है और इसलिए यह क्रम छात्र (तर्क के आधार पर) पुन: सृजित कर सकते हैं। इस तरह ज्ञान के किसी हिस्से को बिना किसी बाहरी मदद के याद किया जा सकता है और उसका अवलोकन किया जा सकता है। इस गतिविधि का महत्व तभी है जब सीखने का मतलब सच्ची समझदारी विकसित होना हो ।

गणित सीखने के संज्ञानात्मक (कॉग्नीटिव) अध्ययनों का ज्यादा जोर गणित की मूलभूत (कोर) अवधारणाओं को समझने पर होता है । स्कूली गणित में समस्या-समाधान या निगमनात्मक तर्क की भूमिका पर आधारित शोध अपेक्षाकृत कम ही हुए हैं । इसका यह मतलब कतई नहीं है कि इन पहलुओं के महत्व को पहचाना नहीं गया है। बल्कि गणित शिक्षण द्वारा गणित जानने वाली जनता तैयार न कर पाने की भारी असफलता और संज्ञानात्मक मनोविज्ञान जैसे परम्परागत अनुशासन के प्रोत्साहन की वजह से ही गणित शिक्षण की वर्तमान स्थिति पैदा हुई है। इसलिए आगे की चर्चा में समस्या समाधान या निगमनात्मक तर्कों की चर्चा नहीं करके हम इस मुद्दे पर आएंगे कि हम बच्चों द्वारा संख्या, संक्रिया तथा बीजगणित सीखने को कितना समझते हैं।

संख्या की समझ

संख्या गणित की सबसे बुनियादी अवधारणा है । बच्चे के विकसित होते मस्तिष्क में संख्या का ज्ञान कैसे निर्मित होता है ? यह ध्यान रखना आवश्यक है कि मनोवैज्ञानिक संदर्भ में हम ज्ञान को सीखने के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं । हम जिन औजारों और संकेतों के द्वारा गणितीय ज्ञान को अन्य उद्देश्यों की दृष्टि से निर्मित करते हैं, वह शायद गणितीय बोध को समझने के लिए अपर्याप्त है ।

1. दुर्भाग्यवश बोर्ड परीक्षाओं को लेकर जो सनक भरा वातावरण है तथा इसके लिए जो सामाजिक दबाव बनता है वह वस्तुत: समस्या का समाधान करने के बजाय महज उसे गणितीय सवालों को रटने के लिए प्रेरित करता है। बहुधा यह सवाल किसी अन्य व्यक्ति मसलन शिक्षक या पाठ्यपुस्तक के लेखक द्वारा हल किये गये होते हैं। अगर हमें सवालों के समाधान करने की संस्कृति की ओर बढ़ना है तब हमें गणित ओलम्पियाड जैसी प्रतियोगिताओं की संख्या और उसके दायरे को और बढ़ाना होगा।

औपचारिक रूप से संख्या की अवधारणा को हम स्वयंसिद्ध मान्यता के रूप में परिभाषित करते हैं - जैसे पियानो की प्राकृतिक संख्या संबंधी स्वयंसिद्ध मान्यताएं । अन्य प्रकार की संख्याओं को भी हम इन्हीं प्राकृतिक संख्याओं के सापेक्ष परिभाषित करते हैं - जैसे ऋणात्मक संख्याएं, प्राकृतिक संख्याओं का धनात्मक व्युत्क्रम है ; परिमेय संख्या में पूर्णांकों के युग्म के समतुल्य-वर्ग हैं; वास्तविक संख्या डीडीकाइन्ड्स कट्र्स हैं इत्यादि। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्राकृतिक संख्याओं की अवधारणा, वस्तुओं (ऑब्जेक्टस) के किसी समूह में, किसी खास तरह के परिवर्तन (ट्रान्सफॉर्मेशन) के दौरान एक निश्चितता बनाये रखने का काम करती है । पियाजे के इस दृष्टिकोण की व्याख्या हम आगे कर रहे हैं।

यहां उस उपागम का जिक्र करना उचित होगा। जिसका पियाजे ने मानव की संज्ञानात्मक कारकों में ज्ञान की संरचना को समझने के लिए उपयोग किया। उसने बच्चे में ज्ञान के विकसित होने के क्रमवार चरणों का अध्ययन किया, ताकि इन विभिन्न चरणों में तथा एक पूरी तरह से विकसित वयस्क में ज्ञान के आपसी अन्तर को सापेक्षिक तौर पर व्याख्यायित किया जा सके । इसे पियाजे ने 'आनुवांशिक ज्ञान-शास्त्रीय' उपागम का नाम दिया। इससे पियाजे को वयस्कों के ज्ञान तथा बच्चों के ज्ञान के अप्रत्याशित अन्तर तथा उसकी प्रकृति को समझने का मौका मिला। संज्ञानात्मक विकास के मनोविज्ञान के क्षेत्र में पियाजे के बाद हुए बहुत से शोधों को पियाजे के अनेक निष्कर्षों से दिशा निर्देश मिला।

पियाजे ने बच्चों की संख्याओं संबंधी समझ को लेकर एक महत्वपूर्ण प्रयोग किया। *संख्या संरक्षण* के इस प्रयोग में बच्चों को वस्तुओं की दो पंक्तियां दिखाई गयीं। दोनों ही पंक्तियों में बराबर की संख्या में वस्तुओं को रखा गया । इन पंक्तियों को इस तरह रखा गया कि एक से एक वस्तु की संगतता साफ-साफ दिखे। जब बच्चों से उन पंक्तियों में रखी वस्तुओं के बराबर होने के बारे में सवाल किया गया तो बच्चों ने अनुमान लगाया कि उन दोनों की पंक्तियों में बराबर वस्तुएं हैं । उसके बाद प्रयोगकर्ता ने बच्चों की मौजूदगी में ही एक पंक्ति की वस्तुओं को फैला दिया। फिर बच्चों से दोनों पंक्तियों के बारे में वही सवाल पूछा गया । आश्चर्यजनक तौर पर यह पाया गया कि काफी बच्चों ने, खास तौर से उन बच्चों ने जो छः साल से छोटे थे, कहा कि बड़ी पंक्ति में ज्यादा वस्तुएं हैं। जबकि उन दोनों पंक्तियों में न तो कुछ जोड़ा गया था, न ही कुछ घटाया गया था ।

जब इस प्रयोग को कई बार दोहराया गया तो इसके परिणामों की व्याख्या ने एक महत्वपूर्ण बहस की शुरूआत की (ब्रायंट 1996) । बहस का मुद्दा यह था कि बच्चे यह क्यों नहीं समझ पाते कि दोनों पंक्तियों में वस्तुओं की संख्या अब भी समान है । इसकी एक व्याख्या यह हुई कि बच्चे इस पूरे कार्य में अन्तर्निहित सामाजिक पहलू की एक गलत व्याख्या करते हैं । प्रयोगकर्ता कुछ दिखने वाले परिवर्तन करता है और फिर से वही प्रश्न दोहराता है जो पहले पूछा गया था । ऐसी परिस्थिति में बच्चे खुद को उत्तर बदलने के लिए संभवतः बाध्य महसूस करते हैं क्योंकि वे प्रयोगकर्ता के इरादे के बारे में स्पष्ट नहीं होते। प्रयोग में बदलाव लाकर इस परेशानी को कम किया गया। जैसे- बच्चों को दो समान पंक्तियां दिखाकर और फिर उनमें से किसी एक पंक्ति में कुछ बदलाव करके या किसी खिलौने के माध्यम से कोई गड़बड़ पैदा करके सिर्फ एक सवाल किया जाता है। (खिलौने के माध्यम से पंक्ति में गड़बड़ करने से चूंकि प्रयोगकर्ता खुद कुछ नहीं करता, इसलिए बच्चे प्रयोगकर्ता के इरादे के बारे में शक नहीं करते) इस बदलाव से गलत उत्तर देने वाले बच्चों की संख्या कम हुई लेकिन बच्चे की उम्र के साथ उसके क्रमबद्ध विकास की पियाजे की स्थापना तब भी प्रासंगिक बनी रही।

पियाजे की इस खोज (जिसके अनुसार कम उम्र के बच्चे संख्या संरक्षण ठीक से नहीं कर पाते) पर एक अलग प्रतिक्रिया गेलमैन और उन सहयोगियों ने की, जिनके काम का संख्या सीखने से जुड़े शोधों पर काफी प्रभाव था। गेलमैन और गेलिस्टेल (1978) द्वारा किये गये इस बहुचर्चित अध्ययन में पाया गया कि इस प्रयोग में बच्चों की यह असफलता उनकी गिनती संबंधी खराब कौशल का परिणाम होती है । पियाजे की नजर में दो समुच्चयों में एक से एक की संगतता गणनत्त्व (कार्डिनैलिटी) को परिभाषित करती है और इसलिए यह संख्या की अवधारणा का भी आधार है। (दो समुच्चयों में) एक-से-एक की संगतता स्थापित करने से गणनत्त्व को पता लगाने के लिए एक आधारभूत ढांचा (स्कीमा)[2] मिलता है। जबकि ऐसा ही हो, यह जरूरी नहीं है। समुच्चयों के बीच संगतता तलाशना तब और मुश्किल हो जाता है जब समुच्चय तितर बितर हों, जैसा बच्चों के जीवन में विभिन्न समुच्चयों में आए दिन दिखाई देता है। इसलिए बच्चे इस कठिन विधि को किसी भी स्थिति में प्रयोग करने से हिचकिचाते हैं । पियाजे के विपरीत गेलमैन का मानना था कि गणना के आधार की समानता स्थापित करने के लिए मूल शर्त गिनती करना है। गेलमैन का यह दावा था कि बच्चे जब तक गिनती

2. स्कीमा (रूपरेखा) - पियाजे के दृष्टिकोण से स्कीमा गतिविधियों के पैटर्न की एक आन्तरिक प्रस्तुति है। पियाजे के सिद्धांतों के लिए यह जरूरी है कि स्कीमा उस परिचित क्षेत्र से बाहर भी प्रयोग में लायी जानी चाहिए जिन परिस्थितियों में उसका उद्भव पहले-पहल हुआ था, स्कीमा का नई स्थितियों में जब प्रयोग किया जाता है तब निचले स्तर की स्कीमा एकीकृत/समायोजित होकर नये जटिल स्कीमा का निर्माण करती हैं। उदाहरण के लिए शैशवकाल में पहुंच और समझ बनाने की स्कीमा, उद्देश्यपूर्वक आंख, हाथ के तालमेल को देखने जैसी छोटी स्कीमाओं के समायोजन से बनती है। (पियाजे तथा इनहेन्डर, 1966)।

के कौशल को पूरी तरह विकसित नहीं कर लेते तब तक वे कई संख्याओं का सापेक्षिक आकलन विश्वासपूर्वक नहीं कर पाते हैं और इसलिए *संख्या संरक्षण* के इस प्रयोग में सफल नहीं होते।

इस प्रकार गेलमैन की इस समझ ने इस मूल प्रश्न को फिर से परिभाषित किया कि बच्चे संख्या की अवधारणा को कैसे हासिल करते हैं । उनका सवाल है कि बच्चों का गणना सीखने का आधार क्या है ? क्या उनके पास इस छोटी उम्र में गिनने की क्रिया में अन्तर्निहित सिद्धांत की समझ होती है ? गेलमैन ने ऐसे पांच सिद्धांतों को रेखांकित किया -

1. एक-से-एक की संगतता : इस सिद्धांत की रूपरेखा पियाजे के एक-से-एक की संगतता से अलग थी। पियाजे के सिद्धांत में संगतता दो समुच्चयों के बीच थी जबकि गेलमैन के अनुसार गिनने के लिए आवश्यक एक-से-एक की ''बुनियादी संगतता'', गिनने के लिए इस्तेमाल किये गये संख्या संकेतों (शब्द) और उन वस्तुओं के बीच होनी चाहिए जिन्हें इन संख्या संकेतों से जोड़ा गया है। समुच्चय की प्रत्येक वस्तु को केवल और केवल एक संख्या संकेत दिया जाना चाहिए।

हमारी सांस्कृतिक विरासत में गणित का एक महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि यह एक ऐसा ज्ञान है जो अपनी वैधता के लिए कठोर परीक्षण से गुजरता है । गणित निगमनात्मक साक्ष्यों के एक प्रतीक पर दृढ़ता पूर्वक खड़ा है। यही वह कारण है कि गणित ग्रीक–काल से ही ज्ञान की दूसरी शाखाओं में काफी फैला है मसलन ज्योतिषिय विद्या, दर्शन, तर्क, भौतिक तथा रसायन शास्त्र ।

2. स्थायीक्रम देना (स्टेबल ऑर्डिरिंग) : गिनती के लिए जिस संकेत का इस्तेमाल किया गया हो- जो समुच्चय अवयवों से संबद्ध होता है- उसे एक निश्चित क्रम में होना चाहिए । यह क्रम संख्या संकेत शब्दों के परम्परागत क्रम से अलग हो सकते हैं तथा कई बार यह क्रम उन छोटे बच्चों के लिए भी अलग होता जाता है जो गिनना शुरू करते है ।

3. एकक तटस्थता (आइटम इन डिफरेन्स) : संबद्धता की इस क्रिया में सभी एकक (आइटम) बराबर होते हैं । समरूप तथा विषमरूप समुच्चयों को भी गिना जा सकता है ।

4. क्रम की अप्रासंगिकता : जिस क्रम में अलग-अलग एककों (आइटम) को आपस में संबद्ध किया जाता है उनका गिनती के प्रतिफल से कोई संबध नहीं होता है ।

5. कॉर्डिनलिटी : समुच्चय में जो अन्तिम संकेत होता है वह पूरे समुच्चय के गुणधर्म को नामांकित करता है। इसलिए किसी समुच्चय में अन्तिम संकेत शब्द (टैग) '5' हो तो 5 उस समुच्चय का गुणधर्म होगा अर्थात गणन मूल्य (कार्डिनल वैल्यू) होगा।

गेलमैन की यह खोज महत्वपूर्ण रही कि चार साल या उससे भी छोटे बच्चों के व्यवहार में गिनती के इन सिद्धांतों से जुड़ी संक्रियाएं दिखती हैं । यह बात पियाजे के ठीक विपरीत थी, जो बच्चों में छः-सात साल की उम्र तक संख्या की अवधारणा को नकारते थे । अगर छोटी उम्र के बच्चे वाकई इन सिद्धांतों से परिचित होते तो वे गिनती करते समय या गिनने का अभिनय करते समय महज 'शब्दों का खेल' नहीं करते। इसकी संभावना काफी कम है कि वे 'कैसे गिनें' इस सिद्धांत को महज वयस्कों को देख देख कर आत्मसात कर लेते हैं, वह भी बगैर किसी आंतरिक सांचे के, जो कि उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से सिद्धांत को निकालने में मदद करे। तर्क की यह दिशा बहुत कुछ चॉमस्की जैसी है । चॉमस्की के *सिन्टेक्स* पर किए गए काम का संज्ञानात्मक-विकास के मनोविज्ञान के पूरे क्षेत्र पर जो प्रभाव रहा है, यह उसका एक उदाहरण है। गेलमैन ने पियाजे का जवाब क्षमता और निष्पादन में भेद के आधार पर दिया था। बच्चों के पास गिनने के सिद्धान्त को आत्मसात् करने की आधारभूत दक्षता होती है, लेकिन वास्तविक गणना के लिए उस (सिद्धान्त) का पूरा कौशल नहीं होता। इसलिए उपरोक्त (पियाजे के) प्रयोग जैसी स्थितियों में इसका उपयोग करने में हिचकते हैं। जब कोई ऐसी स्थिति आती है, जिसमें दो समुच्चयों की बहुलता (न्यूमेरॉसिटी) की तुलना करनी हो तो बच्चे अक्सर निर्णय लेने के लिए कुछ गुणधर्मों को आधार बनाते हैं । अगर उनके पिछले अनुभवों में गिनना और एक-से-एक की संगतता देखना - दोनों तरीके अविश्वसनीय रहे हों तब संभव है कि वे समुच्चय की लंबाई जैसे गुणों को आधार बनाएं और परिणाम स्वरूप पियाजे के प्रयोग के असफल परिणाम ही सामने आएंगे।

ब्रायन्ट (1996) ने तर्क किया कि संख्या की अवधारणा की मौजूदगी को जांचने के लिए गेलमैन ने जो मानक बनाए थे, वे काफी कमजोर थे। गिनने के सिद्धांतों को जानना और संख्या की अवधारणा का होना एक ही चीज नहीं है। पियाजे और ब्रायन्ट दोनों ने ही माना कि संख्या की अवधारणा के लिए कॉर्डनलिटी

(गणनत्त्व) तथा ऑर्डनलिटी (क्रम सूचकता) दोनों का होना आवश्यक है। कॉर्डनलिटी इसका आकलन करने में मदद करती है कि दो समुच्चय संख्यात्मक तौर पर बराबर हैं और ऑर्डनलिटी बच्चों को इसे समझने में मदद पहुंचाती है कि 4 की कॉर्डनलिटी वाला समुच्चय '3' की कॉर्डनलिटी वाले समुच्चय से बड़ा है और इसलिए '3' की कॉर्डनलिटी वाला समुच्चय '2' की कॉर्डनलिटी वाले से बड़ा है। इसलिए 2,3 तथा 4 केवल संख्या शब्द नहीं हैं जो एक निश्चित क्रम में सामने आते हैं, बल्कि ये एक सापेक्षिक आकार को बताते हैं । ब्रायन्ट की दृष्टि में गेलमैन ने इस मुद्दों को कोई केन्द्रीय मुद्दा नहीं माना । गेलमैन की नजर में कॉर्डनलीटी के सिद्धांत को जानना महज किसी समूचे समुच्चय में गिनी गई आखिरी संख्या को उसके गुण के तौर पर पहचानना ही है ।

पियाजे का मानना है कि बच्चा इससे आगे यह भी जाने कि वे दो समुच्चय, जिनका कॉर्डिनेलिटी (गणनत्त्व) बराबर हैं । संख्या में भी एक दूसरे के बराबर है (इसके विपरीत अगर इन दो समुच्चयों का कार्डिनेलिटी मूल्य बराबर नहीं है तो वे संख्या में भी एक दूसरे के बराबर नहीं होंगे)। ऐसे बच्चे जो गिनने के सिद्धांत का स्थाई ज्ञान रखते हैं, वे भी दो समुच्चयों के बराबर होने के मामले में किसी निष्कर्ष पर पहुंचने में असफल होते हैं । ग्रेसों (1962) (ब्रायन्ट (1996) द्वारा उद्धत) ने पाया कि जो बच्चे दो पंक्तियों में रखी वस्तुओं को ठीक-ठीक गिन लेते हैं तथा यह बताते हैं कि दोनों पंक्तियों में पांच-पांच वस्तुएं रखी हुई हैं, वे भी लम्बाई के आधार पर पंक्ति में वस्तुओं की ज्यादा संख्या की ओर इशारा करते हैं । एक अन्य प्रयोग में सोफियन (1988, ब्रायन्ट द्वारा 1996 में जिक्र) ने बच्चों से पूछा कि क्या यह पुतला, जिसे गिनने का काम सौंपा गया है, अपना काम सही ढंग से कर पा रहा है ? इस पुतले से कभी यह पूछा गया कि उसके सामने रखी हुई कुल वस्तुएं कितनी हैं ? तो कभी उसे दो समुच्चयों में तुलना करने को कहा गया। छोटे बच्चे यह पकड़ पाने में असफल रहे कि पुतला गलती कर रहा है, खासतौर से तब जब उसे सभी वस्तुओं को गिनने को कहा गया और तब भी जब उसे दो समुच्चयों की तुलना करने को कहा गया। इसलिए उनके संदर्भ में गिनने का मात्रा से कोई संबंध नहीं था, हालांकि वे गिन पाने में सक्षम थे। इस प्रयोग से जो निष्कर्ष निकलता है, वह गेलमैन के इस नजरिये के विपरीत जाता है कि चूंकि बच्चे गिनने का कौशल नहीं जानते हैं इसलिए *संख्या-संरक्षण* प्रयोग में वे बहु-संख्याओं को गिनते समय इसका इस्तेमाल नहीं कर पाते और असफल होते हैं।

क्या इसका मतलब है कि पियाजे का दृष्टिकोण सही है ? क्या ये बच्चे संख्या-संरक्षण प्रयोग में इसलिए असफल हो जाते हैं कि उन्हें एक-से-एक की संगतता का कुछ पता नहीं होता, या अगर कोशिश करते भी हैं तो वे इसे मात्रा से जोड़कर नही देख पाते हैं ? एक रूचिकर प्रयोग में फ्रिडमैन तथा ब्रायन्ट (1988 ब्रायन्ट द्वारा 1996 में जिक्र) ने बच्चों से हिस्सा-बांट की स्थिति में बच्चों से एक-से-एक की संगतता का प्रयोग करने को कहा । बच्चे बराबर बंटवारे के लिए 'एक तुम्हारे लिए' और 'एक मेरे लिए' से परिचित थे, जो कि 'एक से एक की संगतता' का एक काम चलाऊ स्वरूप था। जिस प्रश्न को फ्रिडमैन और ब्रायन्ट ने पूछा वह यह था कि क्या बच्चे मात्राओं से इसके अनिवार्य संबंध को बिना समझे, इस (एक तुम्हारे लिए-एक मेरे लिए) कार्य-योजना को यांत्रिक तौर से लागू करते हैं ? बच्चों को दो प्राप्तकर्ताओं को चॉकलेट बांटना था, जो ब्लॉक के रूप में था उनमें से एक को इकाई ब्लाक लेना था तथा दूसरे को दोहरा ब्लॉक लेना था। पांच साल के अधिकांश बच्चे जो चॉकलेट बांट रहे थे, उन्होंने चॉकलेट के ब्लॉक को इस तरह से बांटा कि प्रत्येक प्राप्तकर्ता को समान संख्या में चाकलेट मिले तथा दोहरे तथा इकाई ब्लॉक से होने वाले घाटे की भरपाई हो सके। जबकि चार साल के अधिकांश बच्चे ऐसा करने में असफल रहे, जिससे दोनों प्राप्तकर्ताओं को बराबर चॉकलेट मिल पाएं। नतीजतन एक प्राप्तकर्ता को दूसरे से दो-गुना चॉकलेट मिले। इसके बाद जो दूसरी कोशिश की गई उसमें दोहरे-ब्लॉक को दो अलग-अलग रंगों के ब्लाक को भी उसी रंग का रखा गया। इस स्थिति में चार साल के बच्चों ने न सिर्फ जरूरी समायोजन किया बल्कि इस ज्ञान का सफलतापूर्वक इस्तेमाल अगली कोशिश में किया और एक ही रंग के दोहरे ब्लॉक बांटे।

ऐन पियाजे के नजरिये से इसे देखें तो पाते हैं कि चार साल का बच्चा दरअसल मात्रा के बारे में समझता है और वह इसका साधारण बंटवारे की स्थितियों में आश्चर्यजनक रूप से जरूरत के मुताबिक प्रयोग कर सकता है । पियाजे का यह विश्वास था कि बच्चे अनिवार्य रूप से 'प्रि-आपरेशनल' से 'कंक्रीट आपरेशनल' स्तर तक जाते हैं। यह परिवर्तन संख्या की अवधारणा सीख रहे बच्चे में छः साल की उम्र के आसपास होता है। जब बच्चा यह समझने लगे कि किसी असतत समुच्चय में स्थानिक या किसी अन्य तरह के परिवर्तन के बावजूद संख्या में परिवर्तन नहीं होता, तब समझना चाहिए कि वह संख्या संरक्षण को समझ सकता है। संख्या की अवधारणा हासिल करने के लिए यह जानना जरूरी है कि कुछ परिवर्तन किसी समुच्चय विशेष की कार्डनलिटी पर कोई असर नहीं डालते । पियाजे का मानना है कि कोई बच्चा संख्या की अवधारणा तभी हासिल कर सकता है जब वह समुच्चय में किए गए बदलाव का मन में ही उलट-पलट कर सके। इसलिए - जब हम किसी पंक्ति में

रखी वस्तुओं को बढ़ा देते हैं, बच्चा कल्पना करता है कि चूंकि पंक्ति की लम्बाई नहीं बढ़ी है इसलिए वस्तुओं की संख्या भी नहीं बढ़ी है। संक्रिया के परिणाम स्वरूप आये बदलाव की मानसिक स्तर पर ग्राह्यता, बच्चे के *'आपरेशनल'* स्तर का एक गुण है जो पियाजे के अनुसार *'प्रि-आपरेशनल'* स्तर के बच्चे की क्षमताओं से एकदम अलग है।

क्या इसका मतलब यह है कि 'प्रि-आपरेशनल' स्तर के बच्चे को किसी असतत् समुच्चय, चाहे उसका कोई भी आकार या संख्यात्मकता क्यों न हो, उसकी कोई समझ नहीं होती है। लेकिन पिछले कुछ दशकों में शिशु की संख्यात्मकता और जानवरों (वानर प्रजाति भी इसमें शामिल है) की संख्यात्मकता की समझ पर किये गये अध्ययनों से यह पता चलता है कि इसकी संभावना कम ही है (दाहाएन व अन्य 1997)। चूहों को दृश्य (चमक) तथा श्रव्य (ध्वनियां) दोनों उद्दीपकों की संख्यात्मकता में फर्क करने के लिए प्रशिक्षित किया गया । दृश्य या श्रव्य केवल एक ही उद्दीपक के आधार पर प्रशिक्षित चूहों ने अदल बदल कर प्रस्तुत किए गए उद्दीपकों में से तुरन्त उस उद्दीपक की संख्यात्मकता को छांट लिया, जिसमें वे प्रशिक्षित थे। कबूतरों को इस बात के लिए प्रशिक्षित किया गया कि वे 45 और 50 बार दाना चुनने में अन्तर कर सकें। (30 प्रतिशत गलती के साथ)हालाँकि दाना चुनने में 5 बार के अन्तर को ढूंढ पाने की यह क्षमता छोटी संख्याओं के मामले में ज्यादा अच्छी थी। बन्दर और वनमानुष न सिर्फ विभिन्न संख्यात्मकता को अलग कर पाने की स्थिति में थे बल्कि 1 से 9 तक की संख्याओं के लिए अरबी संख्या को पहचान पाने में भी सक्षम थे तथा सामान्य जोड़ भी कर सकते थे *(कैरे 2001)*।

शिशुओं में संख्यात्मकता की पहचान संबंधी अध्ययनों से पता चलता है कि काफी छोटे शिशु भी एक, दो और तीन वस्तुओं के समूह में अन्तर कर पाने में सक्षम होते हैं। ये अध्ययन खास तौर से परिचय-अपरिचय के प्रयोगों के प्रतिमानों के सहारे होते हैं। शिशुओं को लगातार ऐसी तस्वीरों को दिखा-दिखा कर उनसे परिचय कराया गया, जिसमें कुछ वस्तुएं (माना कि दो) जो अपने स्वरूप आकार तथा स्थिति भिन्न थीं और यह तब तक दोहराया गया जब तक बच्चे एक नियत समय तक के लिए इन तस्वीरों को नहीं देख लेते। इसे हम परिचय अभ्यास कह सकते हैं । उसके बाद उन्हें एक ऐसी तस्वीर दिखायी गयी जिसमें वस्तुओं की संख्या पहले से अलग, जैसे तीन थी। विशिष्ट रूप से यह पाया गया कि बच्चे इन तस्वीरों को ज्यादा समय तक देख रहे थे तथा देखने में लगे समय का अन्तर आंकड़े के रूप में काफी महत्वपूर्ण था और जिससे निष्कर्ष निकला कि वे नयी तस्वीर को उस पुरानी से अलग कर पाने में सक्षम थे, जिनके कि वे आदी हो चुके थे। विन (1992) ने इसी तरह के प्रतिमानों का उपयोग करके यह दिखाया कि शिशु छोटी संख्याओं (1+1 या 2-1) के जोड़ और घटाने का अनुमान लगा लेते हैं । उनके प्रयोग में पहले शिशुओं के सामने कोई वस्तु रखी गयी तब उसके सामने एक स्क्रीन लायी गयी। दूसरी वस्तु को उस स्क्रीन के पीछे (बच्चे के देखते देखते) ले जाया गया, उसके बाद जब स्क्रीन को हटाया गया तब शिशु ने दो वस्तुओं के संभावित परिणाम की तुलना में, तीन वस्तुओं या एक वस्तु के 'असंभव' परिणाम की ओर ज्यादा देर तक देखा। इस प्रयोग को दूसरे अध्ययनों में कई कारकों को नियंत्रित करके बार-बार दुहराया गया तथा यह बताया गया कि बच्चे छोटी संख्याओं तथा छोटे समुच्चय में अन्तर कर पाने में सक्षम हैं । पहले साल में शिशु का जैसे-जैसे विकास होता है वैसे-वैसे उसकी क्षमता बढ़ती है तथा उसे चार वस्तुओं के समुच्चयों को समझने का सामर्थ्य देती है।

इन शोधों के विभिन्न निष्कर्षों से कैसे निपटा जाय ? काफी शुरूआत से ही शिशु किसी समुच्चय की संख्यात्मकता को उसकी अन्य प्रकृतियों से अलग करके देखते हैं । काफी कम उम्र के बच्चे 'कैसे गिनें' के सिद्धांत से अपने परिचय को प्रदर्शित करते हैं। लेकिन अधिकांश बच्चे *संख्या संरक्षण* प्रयोग छ: साल की उम्र तक नहीं कर पाते। इन निष्कर्षों को व्याख्यायित करने का तरीका यह हो सक्ता है कि कहा जाये - बच्चों में संख्यात्मकता को ग्रहण करने की एक बुनियादी क्षमता है जो संभवत: उनमें अन्तर्जात रूप से होती है। बचपन के अपने शुरुआती वर्षो में बच्चे संख्याओं की उस संकेत प्रणाली को सीखते हैं, जिसे मानव समाज ने शताब्दियों में विकसित किया है। ऐसा करते समय वे गिनने में अंतर्निहित बुनियादी सिद्धांतों का पालन करते हैं । संभवत: वे ऐसा, संख्यात्मकता की अन्तर्जात समझ के चलते कर पाते हैं । लेकिन संख्या की इस अंतर्जात अवधारणा का इस्तेमाल संख्यात्मकता के आकलन के लिए तभी कर पाते हैं, जब वे गिनने में दक्ष हो जायें। दूसरे शब्दों में कहें कि बच्चा बड़े होते हुए जो पाता है, वह है- सांस्कृतिक रुप से प्राप्त संकेत-व्यवस्था और संख्यात्मकता की आन्तरिक बोधात्मक व्यवस्था का संयोजन कर पाने की क्षमता।

पियाजे ने इस सिद्धांत का ढांचा तैयार किया कि कैसे बच्चा बगैर किसी अन्तर्जात संज्ञानात्मक क्षमता से शुरू करके वयस्कों की प्रकृति वाली ज्ञान संरचना तक पहुंचता है। इसके विपरीत शिशुओं तथा जानवरों को लेकर किये ये हालिया शोध बताते हैं कि शिशु का मस्तिष्क कोई 'खाली स्लेट' नहीं है जैसा कि पियाजे समझते

थे। भाषा, भौतिक वस्तुओं (ठेठ अर्थ में भौतिक), अन्य मनुष्यों के साथ संबंध व बातचीत (ठेठ अर्थ में मनोवैज्ञानिक), संख्या और यहां तक कि अन्य जीवों (ठेठ जीववैज्ञानिक) के क्षेत्र विशेष के लिए काफी छोटे बच्चों (इन्फैन्ट्स) में अन्तर्जात ज्ञान संरचना होती है। पियाजे ने, जटिल ज्ञान सरंचना प्राप्त करने के क्रम में बच्चा जिन स्तरों और उपस्तरों से गुजरता है, उसका भी विस्तृत ब्यौरा दिया है। पियाजे ने उन स्तरों और उप-स्तरों को आरंभिक तौर पर तार्किक-गणितीय संरचना के विकास के संदर्भ में व्याख्यायित किया था, जिसके बारे में उसका यह विचार है कि यह प्रत्येक परिक्षेत्र में अन्तर्निहित संज्ञान में मौजूद होता है। पियाजे के इस स्तर सिद्धांत और क्रमानुगत संरचनाओं को व्याख्यायित करने के प्रयास किये गये, ताकि इस आधार पर एक जांची जा सकने लायक परिकल्पना गढ़ी जा सके। यद्यपि इस संदर्भ में किये गये शोधों की कसौटी पर पियाजे द्वारा व्यक्त किये गये कई विचार खरे नहीं उतरते हैं (गैलमैन 2000)। दरअसल यह स्पष्ट नहीं है कि कोई ऐसी सुपरिभाषित शृंखला है, जिसका सभी या अधिकांश बच्चे पालन करते हों। जबकि पियाजे की स्थापना थी कि बच्चों की समझ वयस्कों की समझ से स्पष्ट रूप से अलग होती है और पियाजे द्वारा इन अन्तरों को बताने वाली कई प्रवृत्तियों को उसके बाद हुए शोधों में ठीक भी पाया गया।

किसी परिक्षेत्र में एक स्थाई अवधारणात्मक संरचना को हासिल करने के लिए ज्ञान के कई अलग-अलग टुकड़ों को एक जगह लाना होता है तथा उनके बीच आपस में एक समायोजन करना होता है । दूसरे शब्दों में बच्चे अपने अनुभव या प्राप्त निर्देशों से एक सुसंगत (ज्ञान) संरचना का निर्माण करते हैं। सृजनवाद (कन्स्ट्रक्टिविजम्) का यह परिप्रेक्ष्य कि- बच्चा ज्ञान का एक सक्रिय निर्माता है, कोई निष्क्रिय ग्रहणकर्ता नहीं- पियाजे द्वारा मनोविज्ञान और शिक्षा-शास्त्र को दी गई एक महत्वपूर्ण देन है।

संख्याओं के मामले में- और अन्य परिक्षेत्रों में भी- ज्ञान के सृजन में सांस्कृतिक रूप से विकसित एक कृत्रिम संकेत व्यवस्था और अल्पविकसित अवधारणाओं के अन्तर्जात आधार का समायोजन भी शामिल है। संख्याओं की जिस संकेत व्यवस्था को बच्चे सीखते हैं, वह स्थानीयमान के साथ दशमलव प्रणाली है। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगा कि प्राथमिक कक्षाओं में, यानी लगभग कक्षा पांच तक, बच्चे अंकगणित के नाम पर दशमलव व्यवस्था और परिमेय संख्याओं के बारे में ही जान पाते हैं। इसकी तुलना में प्राथमिक स्कूलों में बहुत थोड़ा-सा ही विशुद्ध अंकगणित दिखता है। यानि कि संख्या की प्रकृति इत्यादि। पहले इस पर चर्चा कर लेते हैं कि स्कूली गणित सीखने में क्या-क्या चीजें शामिल हैं जिसमें बहुधा दशमलव प्रणाली के तरीकों पर निपुणता तो शामिल होती ही है।

संख्याओं में संक्रिया

शुरू की कुछ संख्या-शब्दों को सीखने के बाद बच्चे संख्या प्रणाली के उत्पत्ति नियम को सीख लेते हैं जो उन्हें बड़ी से बड़ी संख्या को गिनने में मदद पहुंचाता है। संख्याओं को गिनने के लिए दशमलव संरचनाओं के प्रयोग और उसके उत्पादन के नियम समझना बच्चों के लिए जरूरी है। संख्या को गिनने की 'दशक' की संरचना में भारोपीय परिवार की भाषाओं में कई बारीकियां हैं । जैसे - अंग्रेजी में *'टीन'* का होना,* दो अंकों की संख्याओं के शब्द में एक खास व्युत्क्रम का होना तथा हिन्दी और मराठी भाषाओं में 19, 29, ... के संख्या शब्द का होना । अपनी स्कूली शिक्षा के आरंभिक वर्षों में इन भाषाओं के जरिये सीखने वाले बच्चों के सामने भाषाओं का यह अनोखापन एक तरह की बाधा के रूप में आता है। यद्यपि वे इस उत्पत्ति के नियम तथा गणना-व्यवस्था में एक स्तर की दक्षता प्राप्त कर लेते हैं, फिर भी शुरूआती दौर में जिस परेशानी का सामना वे करते हैं, वह उनके द्वारा इस नियम को तथा बुनियादी-संक्रियाओं की प्रक्रिया को सीखने में बाधा पहुंचाते हैं।

तब संख्या प्रणाली का यह कायदा मात्रा के संरक्षण तथा जोड़ और घटाव की बुनियादी समझ में समायोजन लाता है। इसके बाद जोड़ और घटाव के ज्ञान के बड़े हिस्से को वे सीखते हैं। इन तथ्यों के बनने तथा जोड़ और घटाव संबंधी उनकी क्षमताओं के विस्तार के दौरान बच्चे संख्या प्रणाली के कायदों एवं संक्रियाओं की संरचना पर बनी अपनी समझ के जरिये जोड़ और घटाव के लचीले स्वरूप का विकास करते हैं। जाहिर है कि बच्चे संक्रियात्मक बोध में ऐसा लचीला स्वरूप तभी रख पाते हैं जब उन्हें ऐसा करने का मौका मिलता है । कई स्कूलों में 'दिमागी गणित' पर जोर नहीं दिया जाता है। दिमागी गणनाओं का ऐसा अभ्यास, जिसमें बच्चों को कई तरीकों से गणित की समस्या हल करने को प्रोत्साहित किया जाता है, बारीक अवधारणात्मक समझ के विकास तथा संख्या को इस्तेमाल करने में विश्वास हासिल करने के दृष्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण है। इसको भी समझना जरूरी है कि बच्चों को प्रत्यक्ष रूप से दिमागी गणना सिखाने का महत्व काफी सीमित है। जैसे ही इस अवधारणात्मक आधार का विकास बच्चे कर लेते हैं, वैसे ही उनका

* (अंग्रेजी में 'टीन' यानी दूसरे दशक के संख्या शब्द । इन शब्दों में दहाई के लिए उच्चारित शब्द, संख्या शब्दों में बाद में आता है। लेकिन अन्य दहाई शब्दों जैसे ट्वेन्टी वन, ट्वेन्टी टू में यह क्रम बदल जाता है इसी तरह हिन्दी और मराठी में 19, 29, और 39.. के लिए जो संख्या शब्द हैं वे अन्य संख्या शब्दों के क्रम से अलग हैं।

कौशल एक प्रभावशाली दक्षता तक पहुंच जाता है और कई बच्चे ये स्तर कुछ थोड़े से, स्पष्ट तौर से बताये गये निर्देशों के जरिये हासिल कर लेते हैं।

इस दावे का साक्ष्य हमें *'स्ट्रीट-मैथेमेटिक्स'* नामक अध्ययन से मिलता है। यह कोई अलग व अनोखी बात नहीं है कि बहुत से वयस्क व्यावसायिक आदान-प्रदान के दौरान गणना की अमान्य विधियों का प्रयोग करते हैं। इन विधियों का बहुधा लचीला प्रयोग किया जाता है, जो कि बुनियादी संक्रियाओं की अवधारणात्मक समझ के एक कामचलाऊ स्वरूप को दिखाता है । यह ज्ञान केवल वयस्कों में नहीं पाया जाता बल्कि बच्चों में भी पाया जाता है। ब्राजील में गली मौहल्लों में काम करने वाले बच्चों के साथ किये गये एक अध्ययन से पता चलता है कि वे बच्चे कई वस्तुओं या कई चीजों का दाम निकालते समय मानसिक गणना की लचीली रणनीति का प्रयोग करते हैं। इबारती समस्या, जिसमें वही संख्या तथा वही संक्रियायें शामिल थीं, को जब औपचारिक स्कूली अन्दाज में उन बच्चों के सामने रखा गया तो उन्होंने कई गलतियां कीं। स्पष्ट है कि बच्चे अपने *'स्ट्रीट मेथेमेटिक्स'* के ज्ञान का सृजन स्कूल से स्वतंत्र रहकर कर सकते हैं (कैरेहर 1980)।

यह असंगत लगता है कि बहुत से छात्र कुछ खास विधियों में काफी बुरा प्रदर्शन करते हैं, मसलन - घटाने की गणनाविधि या भाग की गणनाविधि । गौरतलब है कि बुनियादी संक्रियाओं की गणनाविधि को सीखना उनके प्रयोगात्मक बोध को हासिल करने से एकदम अलग है। गणनाविधि विधियों का ऐसा सरलीकरण है जो संक्रियाओं को चरणों में घटा देता है, जिसमें एक अंक की संख्याओं के साथ गणनाओं को करना होता है। दशमलव का स्थानीय चिन्ह इस संकुचन को संभव बनाता है। जाहिर है कि ऐसे में जब एक अंक की संक्रियाएं मानकीकृत रूप में नहीं होती हैं तब विशेष ध्यान देने की जरूरत पड़ती है। मसलन- जब हम छोटे अंक से बड़े अंक को घटा रहे होते हैं तब, या जब उसमें शून्य भी शामिल हो तब, बहुत से छात्र गलतियां करते हैं । उनमें से कई बच्चे गलती से यह मान लेते हैं कि वे केवल एक अंक की संख्या के साथ काम कर रहे हैं । बहुधा इन बच्चों के लिए गणनाक्रम उनकी अवधारणात्मक समझ से अलग होता है।

1970 में ब्राउन तथा वेनलेन (1980) ने इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण अध्ययन किया। कम्प्यूटर प्रोग्राम की मदद से उन्होंने घटाने की विधि के लिए ज्ञान के एक त्रुटिविहीन संज्ञानात्मक मॉडल के विकास की कोशिश की ताकि बहुत से बच्चों द्वारा की जाने वाली गलतियों को दूर किया जा सके। बच्चों द्वारा की जाने वाली अधिकांश गलतियों में सुधार प्रक्रिया पर ध्यान देने से ही संभव था। अवलोकन करने पर पाया गया कि वे बच्चे जिन्होंने विशिष्ट स्थितियों के लिए विधि विशेष याद नहीं कर रखी थी, किसी दूसरी विधि को अपनाकर उसकी भरपाई करते, जिससे वे एक और गलती की ओर बढ़ जाते थे। वह मॉडल, जिसमें छात्र काफी बड़े अनुपात में गलतियां करते थे, एक बार फिर से अवधारणात्मक-ज्ञान और प्रक्रियात्मक-ज्ञान के बीच अलगाव का साक्ष्य था।

इस तथ्य- कि यह अलगाव बहुत व्यापक है- ने कुछ शोधार्थियों को इसके लिए प्रोत्साहित किया कि वे बच्चों द्वारा जोड़ तथा घटाव के लिए उनकी स्वयं की प्रक्रिया निर्माण पर जोर दें और मानकीकृत गणनाविधि के शिक्षण को तब तक स्थगित रखें जब तक बच्चे अपनी प्रक्रिया का निर्माण स्वयं नहीं कर लेते (फ्यूसन, 1997) । यह स्पष्ट नहीं है कि यह तरीका शिक्षकों तथा पाठ्यक्रम निर्माताओं के वृहतर समूह को स्वीकृत होगा या नहीं। जाहिर है कि स्कूल में पढ़ाये जाने वाले गणनाक्रम - साधारण, सामान्य तथा अति-शक्तिवान होते हैं। इन गणनाक्रमों में बच्चों की निपुणता का विकास करने के लिए जरूरी है कि हम उन्हें पर्याप्त समय दें। अब इस बात को समझा जा रहा है कि स्थानीयमान की अवधारणात्मक समझ और संक्रियाओं के सहज तरीकों को शिक्षण के मानक गणनाक्रमों से कैसे जोड़ा जाये कि छात्रों की समझ बढ़ सके। (1999)

संक्षेप में बच्चे धीरे-धीरे संख्याओं को गिनने, जोड़ और घटाव की संक्रियाओं को सीख लेते हैं और इसके लिए सांस्कृतिक रूप से विकसित संख्या की संकेत व्यवस्था से उनके परिचय से ज्यादा कुछ नहीं चाहिये होता। दरअसल, वयस्क होने वाले सभी छात्र जोड़ और घटाव की स्कूली विधि को बगैर गलती किए जारी नहीं रख पाते। लेकिन इन संक्रियाओं के संदर्भ में उनका ज्ञान कामचलाऊ तथा लचीला होता है जिससे वे उन सवालों एवं समस्याओं के समाधान के लिए अपनी स्वयं की रणनीति विकसित कर पाते हैं, जो उनके लिए महत्वपूर्ण है। आरंभिक गणित से जुड़े हुए शोध के आधार पर कुछ शोधार्थियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि संख्याओं तथा जोड़ और घटाव की संक्रियाओं के ज्ञान को विकसित करने के लिए एक अन्तर्जात (इन्नेट) आधार होता है (गेलमैन 2000)। तब यह सवाल उठता है कि इस मूल आधार से परे गणित क्या है?

प्राकृतिक संख्याओं से परे

स्कूली गणित के वे हिस्से जो प्राकृतिक संख्याओं, जोड़-घटाव की संक्रियाओं से अलग होते हैं, वयस्क होने के दौरान, खुद-ब-खुद कम ही सीखे जा पाते हैं। यही वे हिस्से हैं जो स्कूलों

में बच्चों के लिए मुश्किलें खड़ी करते हैं। गैलमैन (2000) तथा कई अन्य लोगों ने यह बताया कि प्राकृतिक संख्याओं का बेहतर ज्ञान दरअसल गणित के अन्य प्रकरणों (टॉपिक) जैसे परिमेय संख्या को सीखने में बाधा पहुंचाता है। स्कूली गणित में आने वाली परेशानियां- कम से कम कुछ जिनका सामना बच्चे करते हैं- गिनने में तथा जोड़ व घटाव की संक्रियाओं में विकसित उनकी समझ और इसको आत्मसात कर चुके होने की वजह से ही आती हैं।

परिमेय संख्याओं के मामले में बच्चों को जो परेशानियां होती हैं वे इस बात को रेखांकित करती हैं।[3] प्राथमिक शालाओं में परिमेय संख्याओं की संकल्पना को भिन्न की अवधारणा के माध्यम से समझाया जाता है । भिन्न और दशमलव का काम करते हुए बच्चे जो सामान्य-सी गलतियां करते हैं, वह उनके पूर्ण संख्याओं के ज्ञान के त्रुटिपूर्ण विस्तार की वजह से होती है। मसलन 1/8 को 1/7 से बड़ा माना जाना तथा 8.19 को 8.7 से बड़ा माना जाना इत्यादि। बच्चों को भिन्न या दशमलव भिन्न की मात्रा को समझने में काफी परेशानी आती है। पाया गया कि बच्चों में भिन्न को समझने के लिए विभाजित करने की एक सुगठित रूपरेखा का विकास होना चाहिए। या ऐसा होना चाहिए कि वे माप के लिए इस्तेमाल की गई इकाई को लचीले रूप से मात्रा में परिवर्तित कर सकें। उदाहरण के लिए 12 के समूह को कई अलग अलग तरीके से लिखा जा सकता है जैसे 12 'एक' या 6 'दो' या 3 'चार' आदि। यही ढर्रा उस क्षमता का भी निर्माण करता है जिसे हम गुणन क्षमता कहते हैं। इसके अंतर्गत संख्याओं के बीच गुणन-संबंध को समझे जाने का काफी महत्व है। यहां गुणन-संबंध का आशय संख्याओं के आपसी अनुपात से है। हम भिन्न का इस्तेमाल एक ऐसी मात्रा को आंकिक रूप देने के लिए करते हैं, जो पूर्ण संख्या नहीं होती बल्कि पूर्ण संख्याओं के बीच में आती है । उसमें हम एक ऐसी इकाई का चयन करते हैं जो एक से कम हो और जिसकी मात्रा को मापा जा सके। दशमलव भिन्न के लिए छोटी इकाइयां हमेशा 1/10 के घात में होती है।

स्कूली गणित को सीखने के लिए अधिकांश बच्चों और वयस्कों में पाई जाने वाली बुनियादी संज्ञानात्मक क्षमता से अधिक किसी विशिष्ट योग्यता की जरूरत नहीं होती है । जरूरत इसकी होती है कि अलग-अलग संस्कृतियों में विकसित संकेत प्रणालियों में एक समन्वय लाया जाये। अगर बच्चों को ऐसी स्थितियां और अवसर मुहैया कराये जायें जिससे वे उत्साहित महसूस कर सकें तो समन्वय की यह प्रक्रिया प्राकृतिक और परिस्थितियों के अनुसार तात्कालिक तौर पर भी हो सकती है। इस रचनात्मक उपागम का सार यह है कि उपरोक्त समन्वय निर्देशों के जरिये बलपूर्वक नहीं लाया जाये बल्कि इसे सीखने के लिए कार्य के सावधान चुनाव के

इसलिए जब हम ऐसी लम्बाई को नाप रहे होते हैं जो 6 इकाई से ज्यादा हो तथा 7 इकाई से कम और हम इस लंबाई के लिए एक संख्या लेना चाहते हों तब हम 6-7 के बीच के अंतराल को 10 बराबर भाग में बांटते हैं और प्रत्येक भाग को एक संख्या 6.1, 6.2, 6.3 .... के साथ जोड़ते हैं। यदि यह संख्या पर्याप्त शुद्ध नहीं होती अर्थात, जब हम पाते हैं कि लंबाई 6.2 और 6.3 के बीच कहीं है, तब हम 6.2 और 6.3 के अन्तराल को 10 बराबर भागों में बांटते हैं तथा प्रत्येक को फिर 6.21, 6.22, 6.23 ..... इत्यादि से दर्शाते हैं। यह प्रक्रिया अनंत तक चलाई जा सकती है । इससे हम शुद्धता के उस स्तर को पा सकते हैं, जिसे हम चाहते हैं और इसके लिए हम प्रत्येक दशमलव बिन्दु के बाद नये अंक को रखते जाते हैं।

सामान्य भिन्न का मामला दशमलव भिन्न के मामले से ज्यादा जटिल होता है क्योंकि पूर्ण संख्याओं के बीच के अन्तराल विभिन्न संख्याओं के समान हिस्से में बंटे होते हैं मसलन आधे, एक तिहाई, एक चौथाई आदि । विभाजित करने का प्रत्येक तरीका एक नयी इकाई का सृजन करता है जिसे कथित तौर से इकाई भिन्न के रूप में जाना जाता है जैसे 1/2, 1/3, 1/4 इत्यादि। ये इकाई भिन्न एक क्रम में हो सकते हैं तथा जैसे ही हर बढ़ता है यह इकाई भिन्न छोटे होते चले जाते हैं । प्रत्येक भिन्न या तो एक इकाई भिन्न होता है या इकाई भिन्न से निर्मित होता है। उदाहरण के लिए 3/5 या तीन बटा पांच, 1/5 + 1/5 + 1/5 के बराबर है। इसलिए अगर बच्चे किसी भिन्न की मात्रा का बोध करना चाहते हैं तो उन्हें इकाई भिन्न की संकल्पना को विस्तार से समझने की जरूरत होती है। साथ ही इसकी भी जरूरत होती है कि किसी दी गई भिन्न और उस इकाई भिन्न- जिससे यह भिन्न विशेष बनी है- के बीच

3. परिमेय संख्याएं वे संख्याएं हैं जिन्हें p/q के रूप में लिखा जा सके। जहां p और q पूर्णांक हैं तथा q शून्य नहीं है। परिमेय संख्याओं की अवधारणा, भिन्न संख्याओं की अवधारणा से ज्यादा व्यापक है। भिन्न शब्द परिमेय संख्याओं का एक सीमित प्रयोग है - अर्थात पूरे और हिस्से के संबंध तक या एक ऐसी संख्या जो दो पूर्ण संख्याओं के बीच होती है।

के संबंध को भी समझा जाये।[4] एक आसान से उदाहरण 3/5 तथा 3/7 की तुलना करते हैं, तब हम पाते हैं कि ये दोनों मिश्र भिन्न हैं इसलिए ये दोनों ही इकाई भिन्न से बने हुए हैं। भिन्न 3/5 - तीन के पांचवे भाग से या तीन 1/5 को मिलाकर बना है जबकि 3/7 - तीन के सातवें भाग से या तीन 1/7 को मिलाकर बना है । चूंकि 1/7 तुलनात्मक रूप से 1/5 से छोटा भिन्न है इसलिए हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि 3/7 छोटा है 3/5 से। दूसरे शब्दों में भिन्न अपने और इकाई अन्तराल के बीच एक संबंध को निरुपित करते हैं, जहां इकाई अंतराल को कुछ निश्चित बराबर भागों में बांटा गया है। विभिन्न हरों वाले दो भिन्नों में संबंध को समझने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि हम यह देख सकें कि एक ही इकाई-अन्तराल को कई अलग-अलग तरीकों से उप-इकाइयों में बांटा जा सकता है। यह प्रक्रिया पूर्ण के समूह को विभाजित करने के समतुल्य है अर्थात, जब हम पूर्ण के किसी समूह को विभिन्न तरीकों से विभाजित करते हैं और इस प्रक्रिया में विभिन्न परिमाण की इकाइयाँ शामिल करते हैं।

परिमेय संख्याओं की अवधारणा को लेकर जो दिक्कतें हैं उनका एक हिस्सा इस तथ्य से जुड़ा है कि हम इसका प्रयोग जिन भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में करते हैं उनसे इसकी किसी समान प्रवृत्ति को निकालना व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है। हम भिन्न का परिचय प्रारंभिक कक्षाओं में ही करा देते हैं, जिसमें हम 'अंश' तथा 'पूर्ण' के बीच के संबंधों को आयत और वृत्तनुमा आकृतियों के जरिये दिखाते हैं। जबकि भिन्न की कई बुनियादी प्रकृतियाँ- भिन्न का क्रम -संबंध, समतुल्य भिन्न, भिन्न का जोड़ तथा घटाव- तब ज्यादा स्पष्ट होती हैं, जब हम भिन्न को संख्या रेखा पर एक निश्चित जगह पर रखकर देखते हैं। जब बच्चे इन अवधारणाओं को समझ रहे होते हैं, उसी समय वस्तुओं के समूह और मात्रा के संदर्भ में अंश-पूर्ण का संबंध भी बताएं। उदाहरण के लिए 1/3 का 15 से संबंध। यहां भिन्न एक इकाई संचालक का काम करता है। परिमेय संख्या का उपयोग मात्रा के अनुपात को दर्शाने के लिए भी किया जाता है। जब हम कहते हैं कि दो लम्बाईयां p/q के अनुपात में हैं, तब इसका मतलब यह होता है कि लंबाई एक इकाई है और पहली लम्बाई इसकी p गुना है, जबकि दूसरी लम्बाई इस इकाई के q गुना है। इनके अलावा हम इन परिमेय संख्याओं का उपयोग भाग की संक्रिया में शेष को दिखाने के लिए एक सुविधाजनक संकेत के रूप में करते हैं। उदाहरण के लिए अगर 13 बराबर आकार की रोटियों को 20 बच्चों में बराबर बांटा जाये तब प्रत्येक बच्चे को ठीक-ठीक रोटियों का 13/20 हिस्सा मिलेगा। या, अगर 12 कलमों की कीमत 450 रुपये है तो प्रत्येक कलम की कीमत 450/12 रुपये होगी। बच्चे इन सभी स्थितियों का सामना स्कूली स्तर के गणित में करते हैं। ताज्जुब होता है कि वे बच्चे भी, जो सभी स्थितियों में परिमेय संख्याओं से सफलता पूर्वक निपट लेते हैं, इस संदर्भ में इस शंका को आसानी से नजरअंदाज कर देते हैं कि इन स्थितियों में क्या समान है।

यह स्पष्ट है कि वे बच्चे जो प्राकृतिक संख्याओं का इस्तेमाल करने में निपुणता हासिल कर चुके हैं उन्हें भिन्न संख्याओं के साथ काम करते समय संख्याओं को उपयोग में लाने का एक पूरी तरह से नया तरीका सीखना होता है। भिन्नों का कोई ऐसा क्रम नहीं होता जो भिन्न संख्याओं के आकार को बताये। दरअसल हम किसी भी दी गई दो भिन्नों के बीच एक और नई भिन्न को ढूंढ सकते हैं। प्राकृतिक संख्याओं के मामले में ऐसा नहीं होता है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि किसी दी गई भिन्न का कोई भी ठीक 'अगली' भिन्न नहीं होती है। इस तीखे अन्तर के अलावा बच्चे को यह भी सीखना होता है, कि भिन्न संख्याओं को अगर प्राकृतिक संख्याओं के समतुल्य रखकर देखा जाए तो वे किसी को भी भटका सकती हैं। अंश और हर में बड़ी संख्याओं के प्रयोग का यह साधारण अर्थ नहीं लगाया जा सकता है कि इसका असर भिन्न के आकार पर भी होगा क्योंकि 421/843, 1/2 से केवल थोड़ा-सा छोटा है तथा 3/5 और 4/5 के ठीक बीच का भिन्न 7/10 है। इन संबंधों को जानने के अलावा बच्चों को यह भी सीखना होता है कि एक ही भिन्न को हम अलग-अलग पूर्ण संख्याओं के प्रयोग के जरिये कई तरीके से लिख सकते हैं, उदाहरण के लिए 1/3, 7/21, 19/57, ...सिर्फ इतना ही नहीं, किसी भी पूर्ण संख्या को भिन्न के रूप में लिखा जा सकता है तथा इसे भी कई तरीकों से लिखा जा सकता है 2 को 4/2, 34/17, 842/421 .....

उपरोक्त चर्चा को समेटते हुए यहां हम यह कहना चाहेंगे कि परिमेय संख्याओं को समझने में आने वाली दिक्कतों के दो मुख्य स्रोत हैं - एक, परिमेय संख्याओं का समझ और अवधारणा के स्तर पर पूर्ण संख्याओं निरा भेद और दो, परिमेय संख्याओं के इस्तेमाल का क्षेत्र वृहद् होना। परिमेय संख्याओं को समझने में पूर्ण संख्याओं का प्रयोग किया जाता है जिसकी दशमलव संरचना को बच्चे किसी तरह से अपने स्कूली जीवन के पहले कुछ सालों में सीख पाते हैं। लेकिन परिमेय संख्याओं को समझने के लिए जब पूर्ण संख्याओं का इस्तेमाल किया जाता है, तब-उनकी व्याख्या एकदम से अलग होती है। दूसरी बात यह है, कि परिमेय संख्याओं का उपयोग 'हिस्से' और 'पूरे' के संबंधों को दर्शाने के लिए, दिये

4. प्राथमिक स्कूल की अधिकांश पाठ्य-पुस्तकों में यह एक समान बात पाई जाती है। थोड़ी-सी ही पाठ्यपुस्तक ऐसी हैं, जो इकाई भिन्न की अवधारणा का जिक्र करती हैं और उस पर जोर देती हैं।

गये समूह या मात्रा के किसी विशिष्ट हिस्से को दर्शाने के लिए, दो मात्राओं के अनुपात को दिखाने के लिए तथा भाग की संक्रिया में बचे हुए शेष को दिखाने के आसान से तरीके के लिए किया जाता है। किसी परिमेय संख्या के विचार को उसके विस्तृत प्रयोग से काफी शक्ति मिलती है। बच्चे परिमेय संख्याओं की विभिन्न संकल्पनाओं को क्रम से एक-एक करके एक समय अंतराल में सीखते हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि इनमें से ज्यादातर परिमेय संख्याओं की न्यूनतम बुनियादी समझ तक नहीं बना पाते । लेकिन जो बात अचरज में डालती है, वह यह है कि इसमें से कुछ विद्यार्थी इस धारणा का सटीक और विश्वासपूर्वक इस्तेमाल कर लेते हैं। परिमेय संख्याओं को लेकर जो विखण्डित दृष्टिकोण अधिकांश पाठ्यक्रमों में देखने को मिलता है, उसे देखते हुए यह और भी विचारोत्तेजक लगता है कि अलग-अलग संदर्भों में सीखी गईं रूपरेखाओं को तात्कालिक रूप से समायोजित किया जाय। इस तरह परिमेय संख्याएं भी स्कूली गणित का एक जटिल हिस्सा बन गई हैं। इस हिस्से की शिक्षण शास्त्रीय समस्या यह है कि कैसे इसके अवधारणात्मक और प्रयोगात्मक ज्ञान का तालमेल बैठाया जाय और परिमेय संख्या के विभिन्न पहलुओं के तालमेल को कैसे बच्चे तक पहुंचाया जाय। वास्तव में इस समस्या का कोई संतोषजनक हल नहीं निकाला जा सकता है।

स्कूली बीजगणित

हमने देखा है कि किस तरह भिन्न के संदर्भ में, बच्चों को एक धारणा सीखने की जरूरत होती है, जो काफी जटिल और उससे अलग होती है, जिससे उनका परिचय पूर्ण संख्याओं के मामले में होता है । बीजगणित में इसकी जरूरत महसूस होती है कि वे संक्रियाओं को देखने के ऐसे नजरिये को विकसित करें जो बिल्कुल अलग हो। यहां धारणाओं की ताकत एक नये स्तर तक विकसित होती है, जो हमें समीकरणों को हल करने, सर्व समिका (आइडेन्टिटी) को अभिव्यक्त करने तथा कार्यकारी संबंधों को ढूंढने के काम आती है । इसकी नयी भाषा और उसकी परम्परा तथा अमूर्तता छात्रों के लिए कई तरह की समस्यायें खड़ी करती है । पिछले कुछ दशकों में छात्रों के बीजगणित की समझ पर कई शोध-अध्ययन हुए तथा ऐसे कई बिन्दुओं को पहचाना गया जहां छात्रों को दिक्कत होती है।

इन अध्ययनों ने छात्रों के बीजगणित संबंधी विचारों का एक मॉडल विकसित किया जो बच्चों द्वारा बार-बार की जाने वाली गलतियों का लेखा-जोखा है । इस क्षेत्र में प्रारंभिक कार्य पियाजे द्वारा दी गई रूपरेखा (स्कीमा) में ही किया गया। कुलीज (1974 केरियन द्वारा 1992 में जिक्र) ने पाया कि दस साल से छोटी उम्र के बच्चों को 4 + 5 = 6+3 जैसे कथनों से दिक्कत है। उसने पाया कि छात्र = चिन्ह के किसी एक ओर के हिस्से को बंधे हुए रूप में रखने की आवश्यकता महसूस करते थे ताकि, इस समीकरण का कोई अर्थ निकाल सकें अर्थात उन्हें इसकी जरूरत हुई कि यह कथन स्पष्ट रूप से कुछ ऐसा लिखा हो 4+5 = 9 तथा बायीं ओर से बदल कर इसे दायीं ओर किया जा सके। कुलीज ने इन बच्चों को पियाजे द्वारा प्रस्तावित कंक्रीट ऑपरेशन स्टेज (मूर्त्त संकल्पनात्मक बोध की अवस्था) का माना। बच्चे जो 10-11 साल से बड़े होते थे तथा फॉर्मल आपरेशनल स्टेज पार कर चुके होते थे, वे संकेतों वाले कथनों में औपचारिक संबंध ढूंढ लेते थे। इस स्तर पर उन्हें कथनों को दांई ओर को बाईं ओर के समतुल्य करने के लिए खुले कथनों को बन्द कथनों से बदलने की जरूरत महसूस नहीं होती।

इसके बाद जो शोध किये गये वे पियाजे द्वारा बनायी गई रूपरेखा से बाहर चले गये क्योंकि देखा गया कि यह रूपरेखा बीज गणित में छात्रों के चिंतन तथा इसके विकास - क्रम को समझ पाने में असमर्थ है । यह संभव नहीं है कि छात्रों में बीजगणित की समझ के विकास के स्तर तथा उम्र के साथ उनके सामान्य संज्ञानात्मक विकास में कोई तालमेल बिठाया जाये । दरअसल बीजगणित में कई गलतियां बच्चे बाद के कार्यों में भी करते हैं । यहां तक कि वयस्कों को भी बीजगणित में अच्छी खासी दिक्कत होती है । क्लीमेंट (1981) ने अपने एक खोजपूर्ण अध्ययन के दौरान स्नातक छात्रों से एक कथन पर आधारित समीकरण लिखने को कहा। वह कथन यह था - ''छात्र, प्रोफेसरों से छ: गुणा ज्यादा हैं तथा छात्रों की संख्या एवं प्रोफेसरों की संख्या के लिए क्रमश: S तथा P का संकेत इस्तेमाल करना है । आश्चर्यजनक तौर पर यह पाया गया कि छात्रों की एक बड़ी संख्या ने जो समीकरण लिखा वह यह था 6S = P बजाए कि वे सही समीकरण S=6P लिखते। वे छात्र जो गलतियां कर रहे थे वे स्पष्ट तौर पर सामान्य भाषा के वाक्य विन्यास को समीकरण में व्यक्त कर रहे थे। आगे की चर्चा में हम देखेंगे कि 'अक्षर' को संख्या के रूप में देख पाने की असफलता तथा कथनों एवं समीकरणों में संख्यात्मक संबंध न निकाल पाने की असफलता बीज गणित में गलतियों का एक बड़ा कारण बनती है। यह स्पष्ट है कि बीजगणित से निपटने में जो परेशानी छात्रों को आती है, वह तब भी कायम रहती है, जब तक वे अमूर्त-वस्तुओं से निपटने की संज्ञानात्मक क्षमता हासिल नहीं कर लेते हैं ।

संकेतों के एक निकाय के रूप में बीजगणित की रचना कैसे होती है इसको जांचने का परिप्रेक्ष्य बीजगणित को सीखने और सिखाने के संदर्भ में समझाने के लिए काफी उपयोगी होगा। स्कूली बीजगणित को तीन स्तरों पर विश्लेषित किया जा सकता है : आण्विक

स्तर (प्राकृतिक भाषा में एक शब्द के समतुल्य), कथन (एक्सप्रेशन) के स्तर (वाक्यांश के समतुल्य) और समीकरण (वाक्य के समतुल्य) के स्तर पर। अंक, चर या शाब्दिक संख्याओं तथा संक्रियाओं के चिन्ह ये सब आण्विक संकेत हैं। हर संकेत के साथ उसका संदर्भी जुड़ा होता है। यह संदर्भी कोई संख्या हो सकता है। यह संख्या कोई अज्ञात अथवा एक सामान्य संख्या हो सकती है। संदर्भी के भीतर संक्रियाएं भी शामिल होती हैं। इसके अलावा कुछ ऐसे संकेत भी होते हैं, जो समूह बनाने में मदद करते हैं। इसमें कई प्रकार के ब्रैकेट होते हैं, जो एक विशेष प्रकार के व्याकरणिक काम में लाये जाते हैं। अगले स्तर पर ये आण्विक संकेत एक साथ जुड़कर एक कथन का निर्माण करते हैं, जिसके कई अर्थ होते हैं। सामान्य कथनों के उदाहरण $x + 3$, $4y$ हैं। पहले कथन में आण्विक संकेत 'x, '+' तथा '3' है ; 'x' चर है, '+' संक्रिया का चिन्ह तथा '3' संख्या है। ज्यादा जटिल कथनों में कई पद शामिल होते हैं $3x^2y + y\ (z-x) - z\ (2y^2-x)$.

'एक कथन के कई अर्थ हो सकते हैं' यह बीजगणित की बुनियाद है और यही बीजगणित की शक्ति तथा इसे सीखने में आने वाली दिक्कत का स्रोत भी है। उदाहरण के लिए कथन $x + 3$ एक संख्या को, संभवत: एक अज्ञात या एक सामान्यीकृत संख्या को निरूपित करता है। यह x में 3 को जोड़ने की भी सूचना देता है, जो x से 3 ज्यादा है या जो 3 से x ज्यादा है। इन उदाहरणों के अर्थ स्पष्ट करने के लिए हम 5+3 तथा 7+1 इन अंकगणितीय कथनों पर विचार करते हैं। दोनों कथन एक ही संख्या को यानी '8' को इंगित करते हैं, लेकिन दोनों '8' की व्याख्या अलग तरह से करते हैं। पहला कथन 8 को, 5 से 3 ज्यादा या 3 से 5 ज्यादा के रूप में करता है, तो दूसरा कथन 8 की व्याख्या 7 से 1 ज्यादा या 1 से 7 ज्यादा के रूप में करता है। इसके बरक्स हम यह भी सोच सकते हैं, कि इन कथनों का अर्थ क्रमश: 5 या 3 का जोड़ और 7 और 1 का जोड़ है। भाव और संदर्भ के बीच का 'फ्रेजियन भेद' अंकगणितीय या बीजगणितीय कथनों पर बड़ी सटीकता से लागू होता है ।

ऊपर की गई चर्चा के संदर्भ में संकेतों का अगला स्तर समीकरणों का होता है । ये वाक्यों के समतुल्य होते हैं। समीकरण एक मुकम्मल कथन होता है, जिसका एक सत्यता मान (ट्रुथ वैल्यू) होता है। समीकरणों में इस बात का दावा प्रस्तुत किया जाता है कि समीकरण के बांयी ओर का कथन समीकरण के दायीं ओर के कथन द्वारा दिखायी गयी संख्या के बराबर होता है। उद्धरण के रुप में देखने के लिए पहले एक अंकगणितीय उदाहरण पर विचार करते हैं, 5+3=7+1 इसका सत्यता मान 'सही' है क्योंकि बांयी ओर तथा दायीं ओर के कथन एक ही अंक को दर्शाते हैं जबकि समीकरण 6+2=7+3 का सत्यता मान 'गलत' है। बीजगणितीय समीकरण सत्यता मान से ज्यादा जुड़े हुए होते हैं । वे अचर के कुछ मानों के लिए सही हो सकते हैं, जबकि अन्य मानों के लिए गलत हो सकते हैं। उदाहरण के लिए समीकरण $x+3=9$ का सत्यता मान $x=6$ के लिए सही होगा और x के अन्य सभी मानों के लिए गलत होगा। चर के उन मानों का समूह जिनके लिए समीकरण सही बनता है उन्हें हल-समुच्चय (या उत्तर समुच्चय) कहा जाता है । सर्वसमिका (आइडेन्टिटी) वह समीकरण है जो एक निश्चित परिक्षेत्र (डोमेन) में चर के सभी मानों के लिए सही होता है । जैसे $(x+3)^2 = x^2 + 6x + 9$ x के सभी मानों के लिए सही है और इसलिए यह एक सर्वसमिका है।

अब हम बीजगणित को लेकर छात्रों में जो दिक्कत होती है उसका उपरोक्त खांचे में विश्लेषण कर सकते हैं। छात्र जैसे-जैसे बीजगणित सीखने में तरक्की करते हैं वैसे-वैसे वे चर के संबंध में अलग-अलग स्तर को प्राप्त करते जाते हैं (बूथ 1984)। इन स्तरों पर ध्यान देना छात्रों की बीजगणित विषयक गलतियों को समझने तथा निर्देशों को तैयार करने में (उपयोगी) सिद्ध होता है। हालांकि इन स्तरों की उपस्थिति अथवा उनके क्रम की कोई अनिवार्यता हो, यह जरूरी नहीं है। अंकगणितीय कथनों के साथ काम करते हुए जब छात्रों का 'अचानक' ही पहली बार चर से पाला पड़ता है, तब वे सामान्यत: उसे खारिज कर देते हैं। यह प्रवृत्ति बाद में चर मात्र को नजरअंदाज करके या सामान्य रूप से चरों को किसी संख्या के द्वारा मनमाने ढंग से स्थानान्तरित करने का रूप ले लेती है । अगले स्तर पर छात्र चरों की व्याख्या किसी वस्तु या बीच के संकेत के तौर पर करते हैं। (उदाहरण के लिए 6a को 6 केलों के रूप में माना जा सकता है) या एक ऐसी वस्तु के रूप में जिसका अपना कोई सटीक अर्थ हो और साथ ही वह कोई संख्या न हो। इसके अगले स्तर पर छात्र चरों की सही व्याख्या एक संख्या के रूप में करते हैं, लेकिन वे इसके बारे में विचार एक नियत मान को लेकर के ही करते हैं, बहुधा एक ऐसी संख्या को इसकी जगह रखकर विचारते हैं, जो उनकी अपनी नजर में सही होती है। कुछ छात्र इन चरों का मान उनके वर्णमाला में स्थान के आधार पर करते हैं, अर्थात् $a=1$, $b=2$ इत्यादि। इसे एक विशिष्ट प्रकार की उलझन से छात्रों के परिचय का परिणाम माना जाता है। इसके अगले स्तर पर छात्र एक चर के कई मान या मानों के एक विशिष्ट समूह या एक ऐसी सामान्यीकृत संख्या, जो कोई भी अर्थ ग्रहण कर सकती है, का सही अर्थ समझने लग जाते हैं। यहां भी छात्र इस संकल्पना को धीरे-धीरे ही समझ पाते हैं, उनकी दिक्कत का खुलासा तब होता है जब 3र+ल के कथन में र और ल का एक ही मान होता है।

इसे हम छात्रों द्वारा इस संकेतवाद के अगले स्तर अर्थात कथनों के समझने के उनके विकासक्रम के अगले मुख्य पड़ाव के रूप में रेखांकित कर सकते हैं। बीजगणितीय कथनों की संरचना और उनके कार्यों की समझ बीजगणितीय विचार प्रणाली के केन्द्र का निर्माण करती है। इसलिए इस स्तर से गुजरने वाले छात्रों के लिए बीजगणित सीखने के लिहाज से यह दौर निर्णायक होता है। एक बार फिर यहां यह देखा जा सकता है कि इन स्तरों से किसी अनिवार्यता का जुडाव नहीं होता है । रोफर्ड और लिंचेवेस्की (1994) द्वारा अपनाये गये विभिन्न स्तरों की सूची नीचे दी गई है।

1. कथनों को संकेतों की एक लड़ी की तरह देखा जाता है। यह स्थिति चर या वर्णमाला के अक्षर की गणितीय कथन में उपस्थिति को स्वीकार न कर पाने से जुड़ती है।

2. कथनों को निर्देशों के एक समुच्चय का ऐसा संक्षिप्त संकेतात्मक रूपान्तरण माना जाता है, जो किसी विशिष्ट गणना के लिए दिया गया हो। इस तरह कथन $2x+7$ को निर्देशों के एक ऐसे समुच्चय का वांछित संकेत माना जाता है, जिसमें एक संख्या को 2 से गुणा करके उसमें 7 जोड़ देते हैं । इस स्तर पर छात्र कथनों को बांध देने की अनिवार्यता महसूस करते हैं तथा उसे एक बंधे हुए स्वरूप या किसी संख्या से बदल देते हैं । इसे एक बड़े पैमाने पर होने वाली गलतियों की शृंखला के रूप में व्याख्यायित किया जाता है, जिसमें छात्र $x+3$ के बदले $x3$ या $3x$ लिखते हों। छात्र अपनी पूर्व कल्पना के आधार पर इन कथनों को ऐसे निर्देश के रूप में लेते हैं जिसमें x में 3 जोड़ा जाना है और इसी आधार पर उत्तर दे देते थे।

3. कथनों को संक्रियाओं के एक समुच्चय के परिणाम के तर्क के रूप में देखते हैं। इस स्तर पर बच्चे उन साधारण समीकरणों को हल करने लग जाते हैं, जिनमें = के चिन्ह के केवल एक ओर ही चर होते हैं और इस क्रम में समीकरणों को हल करने में छात्र ठीक उन संक्रियाओं को उलटे क्रम में कर रहे होते हैं, जिनका जिक्र कथन में होता है । उदाहरण के लिए समीकरण $2x + 5 = 17$ में से अज्ञात चर को तलाशने के लिए वे सबसे पहले 17 में से 5 घटाते हैं फिर उसमें 2 से भाग देते हैं।

4. खुले कथनों को छात्र सहजता से लेते हैं और हल कर लेते हैं। इसलिए छात्र कथनों को जोड़ते, घटाते या गुणा कर लेते हैं तथा समस्या का हल करने के क्रम में उन्हें सरल कर लेते हैं। वे इस बात में भी सक्षम होते हैं कि साधारण कथनों के अर्थ की व्याख्या उपरोक्त चर्चा के संदर्भ में कर सकें।

5. इस स्तर पर अलग अलग कथनों की तुलना की जाती है तथा उन कथनों के बीच के संबंध, मसलन-समरूपता, फलन-संबंध इत्यादि को समझा जाता है। यह बीजगणितीय समझ का एक परिपक्व स्तर है, जहां छात्र फलन की अवधारणा को समझने में सक्षम होते है।

अगला सांकेतिक स्तर समीकरण का है, जहां छात्रों की समझ के लिए स्तरवार विशलेषणकर सकते हैं। यहां एक निर्णायक परिवर्तन '=' चिह्न के संदर्भ में होता है। पहले छात्र इस संकेत का अर्थ 'कुछ करने और परिणाम निकालने' के संदर्भ में करता रहा है और अब इस अर्थ में कि इस संकेत के दोनों तरफ लिखी संख्यायें बराबर हैं। बच्चे प्राथमिक विद्यालयों में बार-बार एक विशिष्ट प्रकार के प्रश्न का सामना करते हैं, जैसे- $7+6 = ?$ जहां उनसे यह उम्मीद की जाती है कि वे '=' के चिन्ह के बाद एक उत्तर लिखेंगे । यह अनुभव उन्हें '=' के चिन्ह को देखते ही इस प्रकार के संकेत के साथ जोड़ देता है मानो उन्हें कोई उत्तर निकालना है। संभवत: ये छात्र शुरूआत में इस प्रकार के प्रश्नों में काफी उलझे रहे हों जैसे- $? = 5+4$ या $3+6 = 4+?$ तथा यह महसूसते हों कि समीकरण गलत तरीके से बनाया गया है। जबकि इस समस्या के समाधान के लिए उनका इस बात से परिचय काफी होता है कि वे दोनों तरफ की संक्रियाओं को हल करें और उनका एक ही उत्तर आये। इससे आगे के बोध-स्तर पर समीकरण को लेकर छात्रों की समझ में विकास समीकरण तथा सर्वसमिका में अन्तर को स्पष्ट कर पाने जैसी बारीकियों को शामिल करना होता है । आगे के स्तरों में समीकरण को हल करने के लिए बहुपदों तथा करणी के नियमों की समझ भी शामिल होती है।

संकेत के तीन स्तरों - आण्विक संकेत, कथन तथा समीकरण - में निर्णायक स्तर कथन वाला ही होता है। दरअसल कई शोधकर्ता उसे अंकगणित तथा बीजगणित के विचार के तरीकों की विभाजक रेखा मानते हैं। अंकगणित तथा बीजगणित का निर्णायक अन्तर वर्णमाला के अक्षरों की मौजूदगी नहीं है बल्कि यह खुले (अनक्लोज्ड) कथनों को व्याख्यायित करने तथा इनके इस्तेमाल करने के तरीके में अन्तर का है। फिलॉय तथा रोजॉनो (1985, हर्सकोव्क्सि तथा लिंचेविस्की 1996 में जिक्र) अंकगणित तथा बीजगणित में एक पहचाने जा सकने वाले फर्क की बात करते हैं। उन्होंने पाया कि वे छात्र जो $3x + 4 = 19$ जैसे एकरेखीय समीकरणों को हल कर लेते हैं वे ही छात्र उन समीकरणों को हल नहीं कर पाते जब चर चिन्ह '=' के दोनों ओर मौजूद रहते हैं, मसलन- $5x+2 = 2x+11$ । उन्होंने माना कि ये छात्र उपरोक्त शिक्षणात्मक विभाजन के अंकगणित वाले पाले में हैं । मूलत: ऐसा इसलिए होता है क्योंकि वे इसे संख्या इंगित करने वाला और संख्या के बारे में संयोजित सूचना देने वाले कथन के रूप में नहीं देखते। स्फार्ड तथा लिंचेविस्की (1994) बीजगणितीय तरीके के चिन्तन को बीजगणितीय कथनों के प्रक्रिया-उत्पाद द्वैध की समझ के रूप में चिन्हित करते हैं, अर्थात इस चिंतन में संक्रियाओं की प्रक्रिया और

इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप निकली संख्या, दोनों ही शामिल है। कई अन्य शोधकर्ताओं ने खुले कथनों के साथ संक्रियाओं को करने में छात्रों की दिक्कतों को चिन्हित किया है।

एक अज्ञात तथा सामान्यीकृत संख्या को निरूपित किया जा सकना, उसका विभिन्न संक्रियाओं में इस्तेमाल किया जा सकना तथा इन संक्रियाओं के परिणाम को एक कथन के रूप में प्रकट करना ही वह आधार स्तम्भ है, जिस पर बीजगणित का शक्ति-स्रोत टिका है।'संख्या को पहचानें' जैसे बच्चों के बीच में प्रचलित खेलों में इसके बेहतरीन उद्धरण दिखते हैं- एक संख्या को सोचें, उसमें 2 जोड़ें, इस जोड़ के परिणाम को 3 से गुणा करें। अब इसमें से मूल संख्या को घटा लें तथा परिणाम को दो से भाग कर दें तथा फिर उसमें से कुल संख्या को घटा दें, उत्तर 3 होगा। जब हम इन संक्रियाओं को एक कथन के रूप में लिखते हैं तब यह हमें सहज ही लगने लगता है।

माना की वह संख्या x है। इसलिए :

बच्चों में संख्यात्मकता को ग्रहण करने की एक बुनियादी क्षमता है जो संभवत: उनमें अन्तर्जात रूप से होती है। बचपन के अपने शुरूआती वर्षों में बच्चे संख्याओं की उस संकेत प्रणाली को सीखते हैं जिसे मानव समाज ने शताब्दियों में विकसित किया है। ऐसा करते समय वे गिनने में अंतर्निहित बुनियादी सिद्धांतों का पालन करते हैं । संभवत: वे ऐसा अन्तर्जात संख्यात्मकता की समझ के चलते कर पाते हैं लेकिन ऐसा तभी हो पाता है कि जब वे गिनने की कुशलता में दक्ष हो जायें । तब वे संख्या की अवधारणा का इस्तेमाल संख्यात्मकता के आंकलन के लिए कर पाते हैं । दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि बच्चा सांस्कृतिक तौर पर विकसित संकेत–व्यवस्था और संख्यात्मकता की आन्तरिक

$$\frac{-3(x+2)-x}{2} - x = \frac{2x+6}{2} - x = 3$$

'संख्या को पहचानें' के हर खेल में समीकरणों का हल शामिल होता है, बहुधा एकरेखीय समीकरणों का। किसी भी समीकरण में वर्णमाला के अक्षर अज्ञात संख्या को निरूपित करते हैं। दूसरा संदर्भ या दूसरी स्थिति में इसकी जरूरत होती है कि अक्षर को सामान्यीकृत संख्या के रूप में व्याख्यायित किया जाये।

यह निरूपण पैटर्नों की खोज तथा अभिधारणाओं की पड़ताल एवं उनके औचित्य निरूपण के लिए बीजगणित को एक महत्वपूर्ण औजार के रूप में गढ़ता है। एक वक्तव्य पर विचार करें :- जब हम दो क्रमवार विषम संख्या के गुणा में 1 को जोड़ते हैं तब हमें हमेशा ही एक पूर्ण वर्ग मिलता है। बीज गणित के प्रयोग से इसे सिद्ध करना काफी आसान है। माना कि दो विषम संख्या $2n-1$ तथा $2n+1$ है, इनका गुणा $4n^2-1$ होगा। इसमें 1जोड़ने से $4n^2$ मिलता है जो कि एक पूर्ण वर्ग है । औचित्य निरूपण की प्रक्रिया में हम यह समझ जाते हैं कि उपर्युक्त कथन दोनों ही क्रमागत विषम संख्याओं तथा समसंख्या के लिए सत्य है और इसे बड़े सरल ढंग से $n-1$ और $n+1$, के रूप में लिखा जा सकता है।

जैसे-जैसे बीजगणित में छात्रों की दक्षता बढ़ती जाती है वैसे-वैसे छात्र बीजगणितीय कथनों से जुड़ी हुई अधिक से अधिक सहूलियतों को हासिल करने की जरूरत महसूस करने लग जाते हैं। यहां तक कि पिछले पैरा में दिये गये वक्तव्य को सिद्ध करने के लिए यह महत्वपूर्ण था कि क्रमवार संख्याओं के लिए बीजगणितीय कथन के एक उपयुक्त स्वरूप का चुनाव किया जाये। इसके लिए बीजगणितीय कथनों से गहरे परिचय की व कथनों के बीच के संबंधों की बारीकियों को समझने की जरूरत होती है तथा कथनों की विभिन्न क्रियाओं के बाद आने वाले परिणाम का आकलन कर पाने की क्षमता की जरूरत होती है। किन्तु इन सब के लिए बीजगणितीय कथन क्या है - यह समझना जरूरी होता है।

इससे पहले हमने देखा कि बहुत से बच्चे पूर्ण संख्याओं तथा बुनियादी संक्रियाओं के बारे में एक लचीली समझ थोड़े से सहयोग से हासिल कर लेते हैं। इस प्रक्रिया में एक समन्वय-संख्याओं के लिए सांस्कृतिक तौर पर विकसित संकेत-प्रणाली तथा मात्रा के बोध को संभव बनाने वाली आंतरिक संज्ञानात्मक संरचना के बीच जरूरी होता है, जिसमें मात्रा की समझ बनाने में मदद मिलती है। संकेत प्रणाली के समन्वयन की एक ऐसी ही समरूपी प्रक्रिया बीजगणित में भी देखने को मिलती है। इसका समूचा आधार संज्ञानात्मक क्षमता न होकर बच्चों द्वारा हासिल आरंभिक स्तर पर संख्याओं तथा संक्रियाओं की समझ का लचीलापन होता है। इसलिए केवल तार्किक दृष्टिकोण से ही नहीं बल्कि सीखने-सिखाने के दृष्टिकोण से भी गणित की संरचना एक पदानुक्रम में दिखती है। आरंभिक स्तर पर संकेतों तथा चिन्हों में हासिल की गई दक्षता उस पदानुक्रम में अगले स्तर के विकास के लिए एक अर्ध ठोस वस्तु की तरह काम करती है।

इसलिए संख्यायें, बीजगणित के विकास में अर्ध-ठोस वस्तु की तरह कार्य करती हैं। दरअसल अधिकांश छात्रों के साथ ऐसा होता है कि जब वे बीजगणित सीखना प्रारंभ कर रहे होते हैं, तब संख्या को वे एक ठोस-वस्तु के रूप में ग्रहण कर रहे होते हैं। यही वह आधार है, जिसे बीजगणितीय कथनों की समझ बनाने के लिए विकसित करने की जरूरत है।

उपरोक्त बातों को समेटते हुए हम कहना चाहेंगे कि स्कूली गणित को सीखने के लिए अधिकांश बच्चों और वयस्कों में पाई जाने वाली बुनियादी संज्ञानात्मक क्षमता से अधिक किसी विशिष्ट योग्यता की जरूरत नहीं होती है । जरूरत इसकी होती है कि संस्कृतियों में विकसित संकेत प्रणालियों का एक ज्ञान आधार या समन्वय किया जाये। अगर बच्चों को ऐसी स्थितियां और अवसर मुहैया कराये जायें जिससे वे उत्साहित महसूस कर सकें तो समन्वय की यह प्रक्रिया स्वत: स्फूर्त और स्वाभाविक ढंग से भी संपन्न हो सकती है। इस रचनात्मक उपागम का सार यह है कि उपरोक्त समन्वय निर्देशों के जरिये बलपूर्वक नहीं लाया जाये बल्कि इसे सीखने के लिए कार्य के सावधान चुनाव के जरिये किया जाये। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि यह प्रक्रिया पूर्ण संख्याओं तथा बुनियादी संगणनाओं के साथ निर्देशों के सापेक्ष स्वतंत्र रूप से घटती है। लेकिन इस बुनियादी कोर से आगे बच्चों को सीखने-सिखाने के एक विशिष्ट खांचे की जरूरत होती है, जिसमें उनके पास इसका अवसर होता है कि वे ज्ञान के एक खास आंकडे पर दक्षता हासिल करें तथा छोटे-छोटे टुकड़ों में समन्वयन ला सकें । जहां तक निर्देश के सीखने के एक संकीर्ण परिणाम पर केन्द्रित होने तथा विषयवस्तु को अलग-अलग टुकड़ों में बांटकर उन्हें व्यवहार में लाने का सवाल है, छात्रों के पास इतने अवसर नहीं होते कि अवधारणाओं को हासिल करें तथा उनमें समन्वय स्थापित करें । ◆

References

Brown, J S and K VanLehn (1980): Repair Theory: A Generative Theory of Bugs in Procedural Skills, *Cognitive Science*, 4, pp 379-426.

Bryant, P (1996): Children and Arithmetic, in Lestie Simith (ed.), *Critical Readings on Piaget*, Routledge, London.

Booth, R (1984): *Algebra: Children's Strategies and Errors*, Windsor, NFER- Nelson, UK.

Carraher, T N, D W Carraher and A D Schliemand (1980): Mathematics in the Streets and in Schools in Victor Lee (ed.), *Children's Learning in School*, The Open University, London.

Carey, S (2001): The Representation of Number in Natural Language Syntax and in the Language of Thought in J Branquino (ed.), *The foundations of Cognitive Science*, Oxford, Clarendon.

Clement, J, J. Lochhead and G Monk (1981): Translation Diffculties in Learning Mathematics, *American Mathematical Monthly*, 88, pp 286-90.

Dahaene, S, G Dehaene-Lambertz and L Cohen (1998): Abstract Representations of Numbers in the Animal and Human Brain; *Trends in the Neuro-Sciences*-21 pp 355-61.

Fuson, K C et al (1997): Children's Conceptual Structures for Multidigit Numbers and Mehhods of Multidigit Addition and Subtraction, *Journal for Research in Mathematics Education*, 28 (2) pp 130-62.

Gelman, R (2000): The Epigenesis of Mathematical Thinking', *Journal of Applied Developmental Psychology*- 21, pp 27-37.

Gelman, R and R Baillargeon (1983): 'A Review of Some Piagetian Concepts' in JH Flavell and E Markman (ed.), *Cognitive Development: Vol 3, Handbook of Child Development,* Wiley, New York.

Gelman, R and C R Gallistel (1978): *The Child's Understanding of Number,* Cambridge, Harvard University Press, MA.

Herscovics, Nand L Linchevski (1994): A Cognative Gap Between Arithmetic and Algebra, *Educational Studies in Mathematics*, 27; pp 59 -78.

Kieran, C (1992) : Learning and Teaching of School algebra, in D A Grows (ed.), *Handbook of Research on Mathematics Teaching and Learning*, Macmillan, New York.

Ma, L (1999): *Knowing and Teaching Elementary School Mathematics*, Mahwah, Lawrence Erlbaum Associates, NJ.

Sfard, A and L Linchevsky (1994): 'The Gains and Pitfalls of Reification- The Case of Algebra', *Educational Studies in Mathematics*- 26, pp 191-228.

Piaget, J and B Inhelder (1969) : *The Psychology of the Child, Basic* Books. New York.

Schoenfeld, A (1987): 'What's all the Fuss About Metacognition? in A schenfeld (ed.), *Cognitive Science and Mathematics Education*, Hillsdale, Erlbaum, NJ.

Wynn, K (1992) : 'Addition and Subtraction by Human Infants', *Nature*, 358, pp 749-50.